मूल संस्कृत ग्रन्थों के नामों का संक्षिप्त परिचय ॥

जिनका कि इस पुस्तक में सारांश लिया है।

---

१ पद्मनंदिपंचविंशतिका— २ अथर्ववेद ऋचा प्रथम ३ महाभारत-तुलशीदास, व्यास भाष्य, चाणक्यनीति, कबीर साहब, गुरु नानक, शेख शादी, इञ्जीलशरीफ, न्यामतसिंह, जैन शास्त्र, ४ हितोपदेश, ५ तत्वार्थ सूत्र ६ सागार धर्मामृत ७ तत्वार्थसार ८ छढाला ९ गोमट्टसार जीव कांड मूल गाथा व संस्कृत टीका १० मनुस्मृति ११ हमीर के समय की उक्ति १२ नीति शास्त्र १३ ज्ञानानन्द श्रावकाचार १४ चरित्रसार १५ रत्न करण्ड श्रावकाचार १६ पञ्चास्तिकाय १७ वैशेषिक दर्शन १८ धर्म संग्रह श्रावकाचार १९ सनातन जैन ग्रन्थ माला प्रथम गुच्छक २० पुरुषार्थ सिद्धयुपाय २१ भूधर जैन शतक २२ पुष्पारुणा नीति शतक २३.२४ स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा २५ अमितगति श्रावकाचार २६ गोमट्टसार कर्मकांड गाथा व छाया २७ सर्वार्थ सिद्धि संस्कृत टीका २८ श्रीमत् तत्त्वार्थ राजवार्तिक २९ वाल्मीकीय रामायण संस्कृतश्लोक और भाषा टीका ३० नाग पाले ३१ हिन्दू पद्म पुराण ३२ मार्कण्डेय पुराण ३३ श्रावक क्रियाकोष ३४ सामायिक पाठ ३५ गृहस्थ धर्म ३६ मेरी भावना आदि।

। ॐ नमो महावीराय ।

अहिंसा धर्म प्रकाश ।

पूर्वार्द्ध ।

रचयिता की गांधी जी को भेट।

महावीर अहिंसात्मा 'गांधी' को उपहार ।
'पुष्पलाल' अध्याय दश अर्पत हाथ पसार॥

रचयिता और प्रकाशक

सकरौली (जिला एटा) निवासी—

पं॰ फुलजारीलाल जैन पद्मावती पुरवाल

लवपुरीय संस्कृत ट्रेन्ड शास्त्री

संस्कृत तथा धर्म विभाग प्रधानाध्यापक

जैन हाईस्कूल, पानीपत (पंजाब)

प्रथमावृत्ति १००० } श्री वीर नि॰ सं॰ २४५० सन् १९२४ ई॰ { मूल्य ॥) आना

सुदर्शनलाल जैन के सुदर्शन प्रेस हाथरस में रामप्रसाद गुप्त के प्रबन्ध से मुद्रित।

नम्रनिवेदन

अहिंसा प्रेमी महानुभावो !

आपको विदित हो कि आज कल उन नूतन धार्मिक पुस्तकों को हिन्दी पद्यों में निर्माण होने की अत्यन्त आवश्यकता थी जिनका भाव और भाषा जैन और अजैन सुगमता से समझ सकें। और वे धार्मिक पुस्तकें सर्व मतावलम्बियों के लिये निर्विवाद तथा प्रमाण रूप भी मानी जा सकें। जिससे कि वे पुस्तकें सर्वमान्य और लोक मान्य भी हों इस त्रुटि के कुछ अंशकी पूर्तिको मैं अपनी अल्प बुद्ध्यनुसार दोहा छन्द में यह "अहिंसाधर्म प्रकाश" नामक पुस्तक रचकर अहिंसा प्रेमी साधर्मी भाइयों की सेवा में उपस्थित करता हूं। यह पुस्तक पाठशाला तथा स्कूल के बालक और बालिकाओं को और सर्वसामान्य स्त्री पुरुष मात्रको धर्मज्ञान और सदाचार की वृद्धि के लिये आदर्श स्वरूप होगी। और आशा करता हूं कि इस पुस्तक की एक २ प्रति सबही हिन्दू जैनी मुसलमान पारसी ईसाई अपने २ पास रक्खेंगे जिससे कि वे अपने हृदय में सदैव अहिंसा धर्म के सिद्धान्त (असूलों) को जाग्रति (प्रकाश) करते रहेंगे।

निवेदक—

फुलजारीलाल।

विषयानुक्रमणिका ।

प्रथम अध्याय ।

——:०:——

द्वितीय अध्याय ।

तृतीय अध्याय ।

चतुर्थ अध्याय ।

शुद्धाशुद्ध पत्र ।

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	७	अहिं	अहिंसा
,,	१८	सर्व भूताना	सर्व भूतानाम्
६	१	आवव्यकता	आवश्यकता
,,	७	यत	यतः
,,	६	योक्षमाग	मोक्षमार्गः
,,	१०	तत्वाथ सूत्रस्य	तत्त्वार्थ सूत्रस्य
,,	१६	मयरे पाम्	मपरेषाम्
७	३	विपरिन	विपरित
,,	१०	समपिद्	संसपिद्
,,	२०	निदेश कर	निषेध
,,	२०	लगाकर ही	लगाकर ही के साथ
८	६	अभिमायः	अभिप्रायः
६	६	ज्ञेर्य	ज्ञेयं
१०	१६	अगृहीन भी	अगृहीत ही
,,	१७	करने को	करने से
,,	,,	मिथ्यात्व कहते है	मिथ्यात्वभी होताहै
११	१३	बिलपिन्ते	विलीयन्ते
१५	२	हिन्द का	हिन्दूका
,,	११	जनानां	जैनानां
,,	१८	भिश्ड	भिरड
१६	११	संवधा लाकिक	संबधी लौकिक
१६	११	व्रतोंसे	अपने२ योग्य व्रतोंसे
,,	१३	(१) २४ मिनट	(१) ४८ मिनट
२१	२	तत्वकु त्व	तत्वकुतत्व
२२	८	कांक्षत	कांक्षेत
,,	१४	पुरापादिषु	पुरीपादिषु

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३	६	कहनाय	कहलाय
२५	११	आयगा	आपगा
२६	८	कल्या	करुणा
२७	२	गरू	गुरू
,,	२२	करलो	करना
२८	२	दषेषी	द्वेषी
२०	७	नामगो	नामगो
,,	८	भंडपारीणा	भंडयारोणां
३१	१०	और उनका कहा हुआ धर्म ही मानने योग्य है	उसको कर्म कहते हैं
,,	१६	जीवसे, जीवके	जीभसे जीभके
३४	१५	तोथकर	तीर्थंकर
,,	२५	आर्यवर्त	आर्यावर्त
,,	२६	भव्यात्माओं को	भव्यात्माओंको
,,	२७	३० वर्ष	३० वर्ष के
३८	६	शाक, नुवन्धिय	शोक, नुवन्ध्य
,,	१२	कषाय प्रत्या	कषाय ऽ प्रत्या
३९	५	कषायसे सद्भाव के	कषायके सद्भावसे
४२	१	कोई, कोई	कोइ, कोइ
४३	७	फलमयरस्तु	फलमपरस्यतु
४४	५	नरके	नरक
४५	८	लोकमें जी	लोकमें जीता हुआ
४६	१६	त्रिशतन्त्र	त्रिशत्तन्त्र
४७	११	पर्ज्ञाय	यज्ञीय
,,	१४	सम्यन्नः	सम्यन्नः
,,	७,	भपपास	भपयामास

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४७	१४	वपरस्यास्तु	वपायास्तु
५०	५	इत्याकलव्य	इत्यांकलय्य
५१	४	हिंसा निपध	हिंसा निषेध
५२	१०	समाधि सारस	समाधि सारस्य
५३	१३	परस्ताद	पुरस्ताद
५७	३	द्वितीया	द्वितिया
५८	१६	वीतरागश्च र्वज्ञ	वीतरागश्च सर्वज्ञः
६०	१०	तस्मिन् नध्यानं	तस्मिन् ध्यानं
६२	३	की f	कीरति
,,	८	क्थनस:	कर्णानस:
,,	१३	मितच,जीवगुणाः	मितिच,जीवगुणाः
,,	१९	पानेक, निप्य	पामेकी,नित्य
६३	८	द्विज	द्विजः
६४	१	मद्यपानस	मद्यपानसे
६५	५	जीवघातवि	जीवघातविन
६५	१३	मांसस्पोत्वति	मांसस्यत्पत्ति
६५	१६	मांसमदपिता	मांसभक्षयिता
६६	१	मृतक मां	मृतकमांस
६७	८	याद्याल्लसाः	याद्यल्लसाः
,,	१६	आत्तादेने	आच्छादने
६८	२	ला॰ से	लार से
,,	१०	तद्दन्ति	तद्वदन्ति
७०	८	अत्तें, महापिंग्रा	अन्न ,महर्पिणा
७१	६	गूर	गूलर
७२	२२	सेवासे	संक्षासे
७३	१०	आसलो	ओखली

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७४	१	हिंसा दाप	हिंसा दोष
,,	१२	चपुर्विंशति	चतुर्विंशति
७७	२२	नोट—मांस शराबके	
७८	४	दोष पहले दिखाचुकेहैं	×
		दशनात्	दर्शनात्
८०	६	यहचखे	यहां चखे
,,	१६	नरिक	नारक
,,	१७	याद्विनस्ति	यद्विनस्ति

इति चतुर्थाध्यायः

अहिंसा धर्म प्रकाश को पढ और समझ कर प्रतिज्ञा लेनेवालो से

सविनय प्रार्थना ।

अहिंसा धर्म प्रकास में, यदि बुध किया विहारे ।
चुन चुन प्रतिज्ञा रतन की, तो माला हिय धार ॥

प्रतिज्ञा कर्ताओं को अपने पास रक्खे हुए पहले प्रतिज्ञा फार्म से नकल कर यह दूसारा फार्म पुस्तक रचयिता के पास भेज देना चाहिये जिससे कि वह अपने इस अल्पतम कृत्यको सफली भूत समझ कर और भीकोई दूसरी पुस्तक लिखने को उत्साहित होवे ।

निवेदक—

फुलजारीलाल ।

श्रीमहावीराय नमः

॥ * अहिंसा धर्म प्रकाश

। मंगलाचरण ।

प्रथम अध्याय ।

कर्म काष्ट तप दाहि प्रभु, पाया पूरनज्ञान ।
कहा अहिंसाधर्म जिन, वह प्रणमूं भगवान ॥ १ ॥

सर्वोत्तम अहिंसाधर्म लिखने की प्रतिज्ञा ।

जग के सब ही धर्म में, अहिंसाधर्म अनूप ।
उसका यहाँ[1] संक्षेप से, लिखूं जिनोक्त स्वरूप ॥ २ ॥

सर्वमत सम्मत अहिंसाधर्म ।

सर्व धर्म उपदेश यह, तज हिंसा महापाप ।
जीव दया ही धर्म गहि, सब मत सम्मत आप ॥ ३ ॥

१—(१) मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम् । ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये ॥ इति श्री पूज्यपाद आचार्यविरचितसर्वार्थसिद्धौ ।

२—(१) अहिंसा परमो धर्मो—यतो धर्मस्ततोजयः ।
॥ इति जैनशास्त्रम् ॥

१—(१) जिस अर्हन्त परमात्मा नें ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मरूपी काठ को अपने शुद्धात्मध्यान की अग्नि से भस्मकर पूर्ण केवल ज्ञान को प्राप्त कर सकलपरमात्मा की अवस्था में अहिंसा मई श्रावक और मुनियों के व्रतों का जगतवासी जीवों के लिये उपदेश दिया है उस अर्हन्त भगवान को मैं मन वचन काय से हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूं ।

२—(१) इस पुस्तक में

जीवदया धर्म की महिमा।

जीवदया सब गुणनिधी, वित्तादिक सुखधाम।
धर्ममूल व्रतमात को, धरें धरमि वसुयाम ॥ ४ ॥

४—(१) मूलं धर्मतरोराद्या व्रतानां धाम सम्पदाम्।
गुणानां निधिरित्यङ्गिदया कार्या विवेकिभिः ॥

(पद्मनन्दि पंचविंशतिका)

४—(२) ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रत.।
वाचस्पतिर्बलातेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥ १ ॥

(अथर्ववेद ऋचाप्रथम)

अन्वयार्थ।

(ये) ये (त्रिषप्ताः) त्रिषु जलस्थलान्तरिक्षेषु सम्बद्धाः (विश्वा रूपाणि बिभ्रतः) अनेकविधशरीराणि धारयन्तो नाना जन्तवः (परियन्ति सर्वत्र भ्रमन्ति (तेषाम्) जलस्थलान्तरिक्षचराणांविविधजीवानाम् (तन्वः) शरीराणि (बला) बलवान् श्रेष्ठ इति यावत् अथवा (बला) बलात्कारेणान्यायेनेति यावत् (वाचस्पतिः) वेदवाण्याः पालको विद्वान् (अ,द्य) न हिनस्तु, किन्तु (मे) मां प्रीणयंतु (दधातु) पुष्णातु।

४—(१) धर्म रूपी वृक्ष की जड़ है। ४—(२) श्रावकों के और मुनियों के व्रतों की जीव दया माता है। ४—(३) इस जीवदया को धर्मात्मा ही आठों पहर अपने हृदय में धारण करते हैं।

भावार्थ।

महाकारुण्यको जगदीश्वरो जीवान् बोधयति "सर्वैश्वर्यैककारणीभूतायै मत्प्रीतये विद्वद्भि सर्वजन्तवः सदा रक्षणीयाः न च तेषु केचनं हिंसनीयाः

४—(३) ऋषयो ब्राह्मणा देवाः प्रशंसन्ति महामते।
अहिंसालक्षणं धर्मं वेदप्रामाण्यदर्शनात्॥

(महाभारत अनुशासन पर्व ११४-२)

४—(४) दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलशी दया न छोड़िये, जब लग घट में प्रान॥

(तुलशीदास)

४—(५) तत्रा ऽहिंसा सर्वदा सर्वथा सर्वभूतनामनभिद्रोहः।
अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचन द्वयम्॥
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीड़नम्॥

(व्यास भाष्य)

४—(६)त्यजेद्धर्मं दयाहीनम्।

(चाणक्य नीति अध्याय ४ श्लोक १६)

४—(७) कबिरा तेही पीर हैं, जो जाने परपीर।
जो परपीर न जानि हैं, सो काफिर बे पीर॥

(कबीर साहब)

४—(८) जो शिर काटे और का, अपना रहे कटाय।
धीरे धीरे नानका, बदला कहीं न जाय॥

(गुरु नानक साहब)

४—(९)"मया जार मोरे कि दाना कशस्त"

अर्थात् कीड़ी को भी दुख मत दो क्योंकि बिचारी दाना ले जाती है और हमारी तरह वह भी जान रखती है।

"अजीज़ां मुर्गो माहारी म्या ज़ार। नवाशो ता ख़ज़ल तू पेशे दावार॥

अर्थात् अय प्यारो ! मुर्ग और मछली आदि किसी भी जानवर को तकलीफ मत दो जिस से कि तुम्हें खुदा के सामने लज्जित न होना पडे।

"हजार नमाज कबूल नेस्त गर खातर व्याज़ारी"

(शेखसादी)

अर्थात चाहे हजार वार नमाज पढ़ो यदि तुम किसी को सताओगे तो खुदा तुम्हारी ऐसी इबादत (पूजा) को कभी मजूर नहीं करेगा।

४—(१०)खुदा वन्दने मूसा के द्वारा जो आज्ञाएं भेजी हैं जिनमें से एक यह भी है "Thou shalt not kill" अर्थात तू खून यानी हत्या मत कर॥ (इञ्जील शरीफ)

गजल

४—(११) १—जुल्म करना छोडदो,भाई खुदा के वास्ते।

जुल्म करना है नहीं, अच्छा किसी के वास्ते॥

२—रहम कर जीवों पै बस, मत जुल्म पर बांधे कमर।

क्यों सताता है किसी को, चन्द दिन के वास्ते॥

३—सच कहो खुदगर्ज है, ज़ालिम अरे तू या नहीं॥

बे ज़बां को मारता, अपने मज़े के वास्ते॥

अहिंसाधर्म ग्रहण का प्रयोजन।

आतम शुद्धि की प्राप्ति का, अहिंसा उत्तमद्वार।
जो चाले इस मार्ग पर, पावे सुक्ख अपार ॥५॥

अहिंसा पोषक रत्नत्रय।

अहिंसापोषक रत्नत्रय, सम्यग्दर्शन ज्ञान।
सच्चारित्रमिलि मोक्षमग, आतम सुक्ख निधान ।६।

अहिं । दूषक दोषत्रय।

अहिंसा दूषक दोषत्रय, मिथ्यात्व-अन्याय-अभक्ष।
इनके सबहीभेद को, तज बुध! निजगुण रक्ष ।७॥

४—वेद या पुरान या कुरान, सब पढ़ लीजिये।
है नहीं अच्छा जुल्म, करना किसी के वास्ते॥
५—काटे गला औरों का, मांगे खैर अपनी जान की।
यस कहां होगा भला, तेरा खुदा के वास्ते॥
६—भेट कुरबानी बलि यज्ञ से, खुदा मिलता नहीं।
बलिक दोज़ख है खुला, उन जालिमों के वास्ते॥
७—कर भला होगा भला, कलजुग नहीं कर जुग है यह।
प्यारे यह कहता है न्यामत, तेरे भले के वास्ते॥
(न्यामतसिंह)

४—(१२)अहिंसा सर्वभूताना जगति विदित ब्रह्मपरमम्।
(जैनशास्त्रम्)

६-(१) अहिंसा धर्म को मजबूत करने वाले ये तीनों ही सम्यग्दर्शनादि मिलकर मोक्ष के मार्ग और आत्मा के सुख के खजाने कहे गये हैं।
७-(२) अपने सम्यग्दर्शनादि गुणों की रक्षा करें।

मिथ्यात्वादि दोषत्यागने की आवश्यकता।

जिमि बिन शोधित भूमि में, उगत सुबीज न कोय।
मिथ्यात्वादि के त्याग बिन, आतमशुद्ध न होय।८

मिथ्यात्व का लक्षण॥

आवश्यक जीवादि में, जो उलटा श्रद्धान।
जिसवश पर को निज गिने, यहि मिथ्यात्व पिछान।९।

४—(१३)यत परस्पर विवदमानानां धर्मशास्त्राणां
"अहिंसापरमो धर्मः" इत्यत्रैकमत्यम् (हितोपदेश)

६—(१) सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।
इति महाशास्त्र तत्वार्थसूत्रस्य प्रथमाध्याये १ सूत्रम्॥
(सागार धर्मामृत प्रथमाध्याय ५ श्लोक)

६—(२) स्यात् सम्यग्दर्शनज्ञान, चारित्र त्रितयात्मकः।
मार्गो मोक्षस्य भव्यानां युक्त्यागमसुनिश्चितः॥
(इति तत्वार्थ सार ३ श्लो०)

८...(१) केषांचिद्धतमसायतेऽगृहीतंग्राहायतेऽन्येषाम्।
मिथ्यात्वमिहगृहीतं, शल्यति सांशयिकमपरेषाम्॥

८—(१)जैसे कङ्कर पत्थर आदि बिना हटाये ज़मीन में कोई भी अच्छा बीज नहीं जम सक्ता हैं। उसी प्रकार मिथ्यात्वादि दोषों के त्यागे बिना आत्मा शुद्ध नहीं हो सक्ता है।

९—(१)जरूरी जानने योग्य जीव अजीवादि तत्वों में जो उलटा श्रद्धान है जैसे जीवको पंच भूत से बनाहुआ जड़ मानना या इस देह के उत्पन्न होने और मरने को देखकर जीव का उत्पन्न होना और मरना जानना इत्यादि जो उलटा श्रद्धान है। इस बिपरीत श्रद्धान के वशसे ही यह जीव परपदार्थों को अपना आत्मीय मानता है। इसी का नाम मिथ्यात्व समझना चाहिये।

मिथ्यात्व के ५ भेद।

पांचभेद मिथ्यात्व के, प्रथम एकान्त, बखान।
संशय, विनय, अज्ञान पुनि, पंचम बिपरित, जान।१०।

एकान्त मिथ्यात्व का लक्षण।

अनापेक्ष प्रतिपक्ष जहं, ही समेत अभिप्राय।
यथा सर्वथा नित्य जग, यहि एकान्त कहाय॥११॥

६—(२)जीवादिप्रयोजनभूततत्व, सरधै तिन मांहि विपर्ययत्व।
[छढाला २ ढाल]

८—(३)मिच्छोदयेण मिच्छत्तमसद्दहणं तु तच्च अत्थाणं।
एयंतं—विवरीयं—विणयं—संसयिद मण्णाणम्॥
[गोमट्ट सार जी० काण्ड १५ गाथा)

९—(४) अतत्व श्रद्धान मिथ्यात्वम

१०—(१) ऐकान्तिक—सांशयिकं, विपरीतं—तथैवच।
आज्ञानिकंच मिथ्यात्व, तथा वैनयिकं भवेत्॥
(तत्वार्थसार पंचमाधिकार ३१ श्लो०)

१०—(१) उस मिथ्यात्व के एकान्तमिथ्यात्व, संशयमिथ्यात्व, विनयमिथ्यात्व, अज्ञानमिथ्यात्व, और बिपरीत मिथ्यात्व ये पाच भेद हैं।

११—(१) जहा पर किसी पदार्थ के दो आदि परस्पर विरुद्ध धर्मों का कथन अन्यान्य धर्मों को (सर्वथा अनापेक्ष कर) बिलकुल निषेधकर लगाकर ही कहा जाता है इस ही को एकान्त मिथ्यात्व कहते हैं॥ जैसे इस जगत के सब पदार्थों को कथंचित् नित्यानित्यात्मक अनुभव करते हुये सर्वथा जगत को नित्य ही कहना या जगत् को सर्वथा अनित्य ही कहना एकान्त मिथ्यात्व कहलाता है।

संशय मिथ्यात्व का लक्षण।

आगम युक्ति प्रमाण भी, मिलते जो शक होय।
अहिंसा वा हिंसा धरम, जिमि करे संशय कोय॥१२॥

११—(२) यात्राभिसन्निवेशः स्यादत्यन्तधर्मिधर्मयोः।
इदमेवेत्थमेवेति. तदैकान्तिकमुच्यते॥

[तत्वार्थसार पंचमाधिकार ४ श्लो०]

११—(३) पञ्च विधं मिथ्यात्वम्। तत्र जीवादिवस्तु सर्वथा सदेव, सर्वथाऽसदेव, एकमेव, सर्वथानेकमेवेत्यादि प्रतिपक्षनिरपेक्षैकान्ताभिप्रायः एकान्तमिथ्यात्वम्।

[गोम्मट सा० जीवकाण्ड केशववर्णी कृत संस्कृत टीका १५ गाथा]

१२—(१) किं वा भवेन्नवा जैनो, धर्मोऽहिंसादिलक्षणम्।
इति यत्र मति द्वैध भवेत् सांशयिकं हि तत्॥ (तत्वा० प० ५ श्लो०)

१२-(१) सर्वज्ञ वीत राग भगवान द्वारा कहे हुये आगम (सिद्धान्तशास्त्र) के, युक्ति (दलील) और प्रमाण (सबूत) के मिलने पर भी किसी विषय में सन्देह (शक) करने को संशय मिथ्यात्व कहते हैं। जैसे अहिंसा धर्म को सर्व मत सम्मत और उत्तम प्रमाणित (साबित) होने पर भी इस प्रकार संशय करना कि शायद यज्ञादि में जीवों की हिंसा करने पर भी धर्म होता हो इत्यादि हिंसा में वा अहिंसा के विषय में धर्म निर्णय के (संशय करने को) न कर सकने को संशय मिथ्यात्व कहते हैं।

विनय मिथ्यात्व का लक्षण

सब ही मत के एक से, देव शास्त्र गुरु धर्म।
जांच बिना मूरख करें, यथा विनय के कर्म ॥१३॥

१२-(२)प्रत्यक्षादिप्रमाणागृहीतार्थस्य देशान्तरे कालान्तरे चव्यभि चारसम्भवान् परस्य विरोधिन आप्तवचनस्यापि प्रामाण्यानुपपत्तेरिदमेवतत्वमितिनिर्णायितुमशक्तेः सर्वत्र संशय एवेत्यभिप्रायः संशयमिथ्यात्वम्।

(गोम० जी० सं० टीका १५ गाथा)

१३—(१)सर्वेषामपि देवानां समयानां तथैव च ।
यत्र स्यात्सम दर्शित्वं, ज्ञेयं वैनयिकं हि तत् । (त०प० ८ श्लो०)
सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतयागुरुपादपूजादिरूपयिन ।
येनैव मुक्तिप्राप्तिरिति श्रद्धान वैनयिकमिथ्यात्वम् ॥
(गो० जी० सं० टी० १५ गाथा)

१३—सब ही मतो (मजहबों) के देव शास्त्र गुरू और धर्मों के विषय में मिथ्यापने और सत्यपने की ठीक ठीक जाच किये बिना ही सब की एक समान पूजा भक्ति वा स्तुति करने को विनय मिथ्यात्व कहते हैं ॥ बुद्धिमानो को यह सोचना चाहिये कि जिस देव को हम पूजते हैं यह रागी द्वेषी तो नहीं है ॥ जिस क्रिया को हम धर्म समझ रहे हैं उस से कहीं हिंसा तो पुष्ट नही होती है। जिसे गुरु की (साधु) की हम मनवचन काय से भक्ति करते हैं यह विषय लम्पटी आरम्भी या अज्ञानी तो नहीं है। जिस शास्त्र को हम धर्म शास्त्र के नाम से कहते हैं उसके किसी वाक्य से हिंसा की पुष्टि तो नही होती है या पूर्वापर विरोध तो नहीं आता है इत्यादि विषय में बहुत सोच विचार कर के विनय मिथ्यात्व छोडना चाहिये।

कर्म के मूल ८ भेद

ज्ञान दर्शनावरणि पुनि, वेदनि मोहनि पर्म।
आयु नाम हों गोत्र मिलि, अंतराय वसुकर्म॥५३॥

ज्ञानावरणी कर्म का स्वभाव

जिमि पट[1]आवृतवस्तु को, जानि सकत नहिं कोय।
ज्ञाना[2]वरणि के उदय से, जीव अज्ञानी होय॥५४॥

५३—(१) आद्योज्ञानदर्शनावरणवेदनीय मोहनीयायुर्नामगो-त्रान्तरायाः।

(तत्वार्थ सूत्र अ० ८ सू०

५४—(१) पडपडिहारसिमज्जाहलिचित्तकुलाल भंडयारीणं।
जह एदेसिं भावा तह वियकम्मा मुणेयव्वा॥

(गोम्म० कर्म० २१)

संस्कृत छाया।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
पटप्रतीहारासिमद्यहलि चित्र कुलाल भाण्डागारिकाणाम।
यथा एतेषां भावा तथैव च कर्माणि सन्तव्यानि॥

५०—(१ जिस २ के आश्रय से सम्यग्दृष्टि गृहस्थ के अपने सम्यग्द-र्शन गुण में या अहिंसादि व्रतों में दोष लगने की संभावना हो उस अयोग्य देश का, अयोग्य द्रव्योपार्जन का, अयोग्य मनुष्यादि की संगति का और अयोग्य आचरण का कभी भी आश्रय ग्रहण न करें, तब ही वह सम्यग्दर्शन निर्दोष रीति पाल सकता है। ५०—(२) आप—अपने

५१—(१) कोई भी रागी द्वेषी तथा अल्पज्ञ देवता सब जीवों के हित करने वाले अहिंसा धर्म के पोषक सम्यग्दर्शनादि के स्वरूप को यथार्थ कथन नहीं कर सकता है। सर्वज्ञ वीतराग देव ही पदार्थों के स्वरूप को यथार्थ प्रति पादन कर सके हैं इस लिये वे ही पूज्य हैं।

विपरीत मिथ्यात्व का लक्षण

युक्त्यागम से विरुध की, ठीक नहीं जहं, जांच।
जिमि परिग्रहिं, को ऋषि कथन, वैपरीत्य यह सांच॥१५

अन्याय (अनीति) का लक्षण व भेद

धर्म-जाति नय-राज्य के, जे विरुद्ध आचार।
इन तज सब अन्याय को, हे बुध! धर्माधार! ॥१६॥

१५—(१) सग्रन्थोऽपि च निर्ग्रन्थो, ग्रासाहारी च केवली।
रुचिरेवंविधा यत्र विपरीत हि तत्स्मृतम्॥ (त० पं० ६ श्लो०)

१५-(२) अहिंसादिलक्षणसद्धर्मफलस्य, स्वर्गादिसुखस्य, हिंसादिरूपाद्वि यागादिफलत्वेन, जीवस्य प्रमाणसिद्धस्य मोक्षस्य निराकरणत्वेन, प्रमाणबाधितस्त्रीमोक्षास्तित्ववचनेन, इत्याद्यानेकान्तावलम्बने विपरीताभिनिवेशो विपरीत मिथ्यात्वम्।

(गो० जी० सं० टी० १५ गाथा)

१५—जो युक्ति, और वीतराग कथित शास्त्रों से विरुद्ध बातों के विषय में ठीक २ जांच किये बिना ही उसके विषय में विपरीत तरह से समझने को विपरीत मिथ्यात्व कहते हैं। जैसे गृहस्थ के समान रागी द्वेषी परिग्रही को भी ऋषि महर्षि साधु व मुनि आदि नामों से कहना व मानना विपरीत मिथ्यात्व है।

धर्म विरुद्ध आचार निषेध

क्षमा आदि दशधर्म के घातक जे परिनाम।
क्रोध मान माया अनृत, लोभादिक तज काम ॥१७॥

जाति विरुद्ध कुरीति निषेध ॥

उच्चसनातन जाति के, जे विरुद्ध व्यवहार।
विधवा[1] आदि विवाह तज, कर संस्कार[2] प्रचार ॥१८॥

१७—(१) उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्याग-
किञ्चन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥ (तत्वा० सू० नव० ६ सूत्र)
धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् (मनु० ६ अ० ९२)

१८—(१) कन्यादानं विवाहः इति लोकप्रसिद्धिः
न विवाहविधावुक्तं, विधवावेदनं पुनः।
अयं द्विजैः हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः ॥
[मनुस्मृति अध्याय ९ श्लोक ६७]

१७—उत्तम क्षमा १ उत्तम मार्दव २ उत्तम आर्जव ३ उत्तम सत्य ४ उत्तम शौच ५ उत्तम संयम ६ उत्तम तप ७ उत्तम त्याग ८ उत्तम आकिंचन्य ९ और उत्तम ब्रह्मचर्य ये दश धर्म हैं। इनके नाश करने वाले क्रोध मान माया लोभ काम आदि कषाय भावों को छोड़ना चाहिये। क्योंकि ये भाव १० दश धर्मों के नाशक हैं ॥

१८-(१)आदि शब्द से—बालविवाह वृद्धविवाह, अनमेलविवाह, कन्याविक्रय, वेश्यानृत्य, अपव्यय-आतिशबाजी छुड़ाना, स्त्रियों को अपरिचित, रखना एक स्त्री होते हुये दूसरा विवाह करना विवाहादि मंगल समयों में गाली या सीठने गवाना इत्यादि।

१८-(२)गर्भाधानाख्य संस्कारसे लेकर अन्तिम समाधिमरणाख्य संस्कारपर्यन्त २२ संस्कारों का त्रवर्णों की सब जातियों में प्रचार करना चाहिये। (श्री ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद कृत गृहस्थ धर्म)

नय (लोक नीति) विरुद्ध आचार निषेध।

सभ्य जगत की नीति के, विरुद्ध अचार विचार।
गाली चोरी आदि तज, सभ्य बनो हितकार ॥१९॥

स्वराज्यनीति विरुद्ध आचरण निषेध

गृह-पुर-देश--स्वराज्य के, जे विरुद्ध बरताव।
कलह अशुध वस्त्रादि तज, धरि मन उन्नति चाव॥२०॥

सिंह गमन सुपुरुष वचन, कदली फलत न वार।
तिरिया तेल हमीर हट, चढे न दूजी वार॥

[वीर चूडामणि हमीर के समय की उक्ति]

एकपतौ व्रते कन्या व्रतानि धारयन्ति कियन्त्यो महिला।
वैधव्यतीव्र दुखं आजीवनं नेयन्ति कायेनापि॥

[भगवती आराधनासार गाथा ६८ संस्कृत छाया]

उत्पद्यन्ते विलयिन्ते दरिद्राणां मनोरथाः।
बालवैधव्यदग्धानां कुल स्त्रीणाँ कुचाविव। (इति नीति शास्त्रम्)

१९—[१] यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाकरणीयं नाचरणीयमिति लोकोक्तिः।

१९—(२)आदि शब्द से कुसंगति, दुर्व्यसन, हुक्का सिगरट गाजा चरस अफीम कोकीन भागादि नशे और कुशील झूठ अति लालचादि छोडने चाहिये।१९-(३)सज्जन लोगोंके प्रिय पात्र औरसबकी भलाई करने वालेबनो।

२०—(१) कलह—परस्पर की फूट—चुगली— ईर्षा-द्रोह-मायाचारी निर्दयता आदि के परिणाम और ग्राम्य--पंचायतें छोड़कर मुकदमेबाजी में धन फूकना आदि।

२०—(२)अशुद्ध वस्त्र—विदेशी या स्वदेशी चर्बीमिश्रित मलमल लट्ठे आदि, रेशमी टसर आदि के जीव हिंसा से उत्पन्न हुये वस्त्रों के पहनने का तथा हड्डी चमडे आदिकी बनी हुई अशुद्ध चीजोंके व्यवहार को और विदेशी हिंसा पोषक फैशन आदि को त्यागकर अपने अहिंसा-धर्म, जाति, और देश की उन्नति करनी चाहिये।

अभक्ष्य का लक्षण

जिनके भक्षण करन से, लागे हिंसा दोष।
उनको अभक्ष्य पदार्थ गिन, मद्यादिक[1] अघकोष[2]।२१।

अभक्ष्य भक्षण निषेध

मद्य मांस मधु निशिअशन[1], उदुम्बरफल[2] संधान[3]।
कन्दमूल[4] रस से[5] चलित, तज अभक्ष्य मतिमान[6]।।२२।

२१—(१) ओला[1], घोरबड़ा[2], निशि भोजन[3], बहुबीजा[4], बैंगन[5], संधान[6]
बड[7], पीपल[8], ऊमर[9], कठ-ऊमर[10], पाकरफल[11], जो होय अजान[12] ॥
कन्दमूल[13], माटी[14], विष[15], आमिष[16], मधु[17], माखन[18], अरु मदिरापान[19] ॥
फल अतितुच्छ[20] तुषार[21] चलितरस[22] ये अभक्ष्य बाईस बखान ॥१॥
(ज्ञानानन्द श्रावकाचार)

२१—१ शराब मांस वगैरह। २१—२ पाप कर्म की उत्पत्ति के खजाने।

२२—१ रात का खाना २२—२ बड़ के, पीपल के, गूलर के, अंजीर के, और कठूमर वृक्ष के फल २२—३ अचार मुरब्बा राई तैल नमक व सिरका मिलाकर बनाये हुये पदार्थ २२—४ जमीन के अंदर रह कर बढ़ने वाले जमीकन्द आलू अरई आदि २२—५ शास्त्रोक्त मर्यादा से अधिक समयके पदार्थ, वे स्वाद वाले दूध घी आटे आदिके बने हुये कच्चे व पक्के भोजन
२२—६ हे बुद्धिमान!

सच्चे हिन्दू का कर्तव्य ॥

जीव जाति जाने सरव, हिंसा से रहे दूर।

सच्चा हिन्दू होय कर, दया करे भरपूर ॥२३॥

उत्तम सिद्धान्त पालने का उपदेश ॥

असहयोग हिंसा से कर, सत्याग्रह नित पाल।

अहिंसा भक्त 'महात्मा' क्यों न बनो बुध! बाल ॥२४॥

चार आश्रमों के नाम ॥

ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थ पुनि, वानप्रस्थ सन्यास ।

इनका सप्तम अंग में, श्रीजिन किया प्रकास ॥२५॥

२५-१ ब्रह्मचारी गृहस्थश्च, वानप्रस्थश्च भिक्षुकः

कृत्याश्रमास्तु जनानां, सप्तमांगाद्धि निःसृता ॥

(श्री मच्चामुण्डराय विरचित चारित्र सार)

२३-[१] सब संसारी जीव छ काय के हैं। उन में से पृथिवीकाय, जलकाय अग्निकाय, वायुकाय, और वनस्पतिकाय इन एकेन्द्री जीवों को तो पाच स्थावर जीव कहते हैं। छठे त्रस काय के जीवो के ४ भेद है। शम्बूक (घोंघा) शख, सीप, गेंडुआ, कीडो लट कृमी आदि दो इन्द्री जीव है। चिउटीं कुछ जाति के सर्प बीछू, गिजाई, इन्द्रगोप (मखमली गुडिया) घुन, खटमल, जू आदि तीन इन्द्री जीव हैं। पंख वाले कीडे भौंरा मक्खी डांस पिस्सू भिरड और पतंगे आदि चौइन्द्री जीव हैं इनके सिवाय द्विपाये चौपाये पशुपक्षी जलचर और मनुष्य पंचेन्द्रिय जीव है। [२] इन जीवो को इरादे से कभी नहीं मारना चाहिये। ३ना=हिं=हिंसा। दू=दूररहे वह हिन्दू।

२४ —(१)जीव हिन्सा करना छोड़ो २४-(२) सत्य को दृढता से पालो २४—(३) पवित्र आत्मा।

२५—(१)श्री जिनेन्द्र भगवान ने सातमे उपासकाध्ययन अंग में इन चारों आश्रमों का वर्णन विस्तार से दिखलाया है। ब्रह्मचारी ५ प्रकार के होते हैं उपनयन, आलंबन, दीक्षा, गूढ, और नैष्ठिक ॥

२५— (२) वानप्रस्थी खण्डवस्त्रधारी क्षुल्लक वा ऐलक होते हैं ॥

२५— ३ सन्यासाश्रम को भिक्षुक आश्रम भी जैन शास्त्रों में कहते हैं उसके मुख्य ४ भेद हैं ॥ अनगार, यति, मुनि और ऋषि ॥

ब्रह्मचर्याश्रम कर्तव्य

प्रथमाश्रम[२] में प्रविष्ठ हो, श्रेष्ठ गुरु ढिंग चाल ।
उभय[२] लोक विद्या पढे, ब्रह्मचर्य को पाल ॥२६॥

यम वा नियम रूप से प्रतिज्ञा ग्रहण करने की प्रार्थना

अहिंसा धर्म प्रकाश में, यदि बुध ! किया विहार ।
चुन चुन प्रतिज्ञा[१] पुष्पका, गुण युत पहनो हार ।२७।

प्रथमाध्याय सारांश ॥

रत्नत्रय आराधकर, दोषत्रय को त्याग ।
"पुष्पारुण[१]" की प्रार्थना, धरो हृदय वडभाग ! ।२८।

॥ इति प्रथमाध्यायः ॥

२६— १ ब्रह्मचर्याश्रम मे दाखिल होकर इसलोक संबधी लौकिक मातृ भाषा हिसाब आदि, परलोक संबधी पारमार्थिक विद्या अहिंसा पोषक धर्म ग्रंथो का अभ्यास ॥

२७— १ इस अहिंसा धर्म प्रकाश के प्रथमाध्याय मे हे बुद्धि मानों ! अगर आपने पठन रूप पर्यटन (घूमना) कर लिया है तो मिथ्यात्वादि दोषो से रहित सम्यग्दर्शनादि गुणों से गूथे हुये चुनर्करमिथ्यात्वादि के त्याग रूपी प्रतिज्ञा पुष्पो, का हार अपने हृदय में क्यों न पहनो ?

२८—१ इस पुस्तक के रचयिता का सांकेतिक नाम "पुष्पारुण" और व्यावहारिक नाम फुलजारीलाल है॥

प्रतिज्ञा विधि

मैं आज ता०..........से इतने समय के लिये (नियम रूपसे) या अपनी तमाम जिन्दगी के लिये (यम रूप से) मिथ्यात्व, अन्याय अभक्ष्य, तथा इनके इस २ भेद के त्यागने की, इनके सामने..................................मन वचन से दृढ़ प्रतिज्ञा करता हूं। इन को कभी सेवन नहीं करूंगा। इस प्रतिज्ञा को स्मरण (याद) रखने के लिये इस फार्म को भरता हूँ।

मिथ्या का यह २ भेद

....

....

....

....

....

अन्याय के यह २ भेद

... ...

... ...

... ...

... ...

... ...

अभक्ष्य का यह २ भेद

... ...

... ...

... ...

... ...

... ...

प्रतिज्ञा कर्ता—

हस्ताक्षर ————————
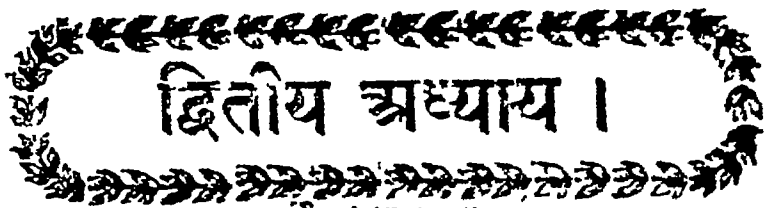
द्वितीय अध्याय ।

धर्म का लक्षण ॥

जगके दुख से जीव को,[1] सुख मग धारे, धर्म ।
आत्मस्वभावहि[2] रत्नत्रय, नष्ट करे वसु कर्म ॥२९॥

रत्नत्रय धर्मके ग्रहण करने योग्य जीव की पहिचान ॥

धर्म ग्रहण के योग्य जिय,[1] संज्ञी[2] भव्य,[3] पर्याप[4] ।
कालादिक[5] लब्धिहि सहित अन्य न होय कदाप ।३०।

२९— १ ससार दु खत. सत्वान्यो धरत्युत्तमे सुखे
(रत्नकरण्डश्रावकाचार २ श्लो०)

२९— २ वत्थु सुहावो धम्मो
(पचास्तिकाय)

२९— ३ सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वराः विदुः ।
यदीयप्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धति २
(रत्नक०३)

२९—४ यतोऽभ्युदयनि.श्रेयससिद्धिःस धर्मः
(वैशे० दर्शन १अध्या०२सू०)

३०— १ भव्यपर्याप्तिवान् सज्ञी लब्धकालादिलब्धिकः ।
सद्धर्मग्रहणे सोऽर्हो, नान्यो जीवः कदाचन ।
(धर्मसग्रह श्रा० २४ श्लो०)

२९— १ सुख के रास्ते पर लगावे । २९— २ अपना आत्मा का शुद्ध स्वभाव सम्यग्दर्शनादि ही धर्म, आठ कर्मों को नष्ट करता है ॥

३०— १ जीव । ३०— २ मन सहित पंचेन्द्रीजीव । ३०— ३ रत्नत्रय धर्म के प्रकट होने की योग्यतावाला ३०— ४ आहार-शरीर—इन्द्रिय-भाषा-मन और श्वासोच्छ्वास इन छै पर्याप्तिवाले को पर्याप्त अर्थात् पर्याप्त कहते हैं ३०—५ ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम को लब्धि कहते हैं, वे ५ हैं ॥ क्षयोपशम १ देशना २ प्रायोग्य ३ करण ४ और काललब्धि ५ ॥

रत्नत्रयधर्म ग्रहण करने वालेपात्र

सम्यग्दर्शन ज्ञानयुत, अहिंसा मय चारित्र।
श्रावक, मुनि, व्रत पालकर, करते स्वात्मपवित्र॥३१॥

रत्नत्रय धर्म का माहात्म्य

मुहूर्त[१] एक समकितरतन[२], पाकर यदि हो त्याग।
वह[३] भ्रमि-भी-मारीचि सम[४], शिवत्रिय[५] धरे सुहाग॥३२॥

३२-(१) मुहूर्त येन सम्यक्त्वं समाप्य पुनरुज्झितं।
भ्रान्त्वापि दीर्घ कालेन स स्तेस्पति मरीचिवत्।
(धर्म सं० श्रा० चतु० ६४)

३१—(१) अणुव्रत के पालने वाले को श्रावक, और महाव्रत के पालने वाले को मुनि कहते हैं। ३१-(२) व्रतोंसे मुनि और श्रावक, आत्मा को कर्म रहित बनाते हैं॥

३२—(१) ४८ मिनट या इससे कम समय भी। ३२—(२) सम्यग्-दर्शन। ३२—(३) संसार में बहुत बार चारों गतियों के तरह २ के दुख को सहन करके भी। ३२—(४) जैसे आदिनाथ तीर्थंकर के पोता मरीचि का जीव संसारमें, बहुत कालतक भ्रमणकर चौथे काल के अंत में महावीर तीर्थंकर होकर मोक्ष को गया था। ३२—(५) शिव त्रिया के सौभाग्य को अर्थात् मोक्ष को प्राप्त होता है।

सम्यग्दर्शन का लक्षण

सांग[1], मूढ़ता, मद रहित[2], सत्य देव-गुरु-शास्त्र ।
सात तत्व[3] श्रद्धान में, होता समकित शास्त्र॥२३॥

सम्यग्दर्शन के दूषक २५ दोष

तीन मूढ़ता, आठ मद, षट् अनायतन जान ।
वसु[1] शंकादि, पचीस इम, समकित दोष पिछान ।२४।

२२—(१) श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम् ।
त्रिमूढापोढ मष्टांगं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ।
(र० क० ४)

३३—(२) तत्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ।
(तत्वार्थ सू० १ अ० २ सू०)

२३—(३) जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्वम् ।
(त० सू० १ अ० ३ सू०)

२४—(१) मूढत्रयं मदश्चाष्टौ, तथानायतनानिषट् ।
अष्टौशंकादयश्चेति दृग्दोषाः पंचविंशति ॥
(ज्ञाना० जै० ध० प्र० गु० टि०)

२२—(१) निःशंकित दि आठ अंग सहित । २३—(२) लोक मूढता, देवमूढता, गुरु मूढता रहित और प्रभुता आदि आठ मद रहित ३३—(३) जीव, अजीव, आस्रव बन्ध, संवर निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्व हैं इनके श्रद्धान से । २३—(४) ने भाई सम्यग्दर्शन होता है ।

२४—(१) परम पवित्र अहिंसाधर्म प्रतिपादक शास्त्रों के विषय में संदेह करना, १—पंचेन्द्रिय विषय भोगादि को चाहना करना २—धर्मात्माओं के रोगयुक्त शरीर में ग्लानि करना ३—कुदेव कुगुरु और कुशास्त्रों को मानना पूजना व सराहना ४—मूढ़ता ५ । है [illegible] वा अविद्यमान दोषों को प्रकट करना ५—धर्मिका [illegible] से [illegible] लड़ाई करना व द्वेष रखना ६—धर्म से गिरते हुओं को धर्म में स्थित करने का प्रयत्न न करना ७—अहिंसा मय जिन धर्म के प्रभाव के बढ़ाने का प्रचार न करना ८—ये शंकादिक आठ दोष हैं । इनके उलटे ही निःशंकितादि ८ अंग जानने चाहिये ।

सम्यग्दर्शन के ८ अङ्गों के नाम

शंका, कांक्षा, ग्लानि नहिं, तत्वकुतत्व पिछान।
उपगूहन, वात्सल्य, थिति, अंग प्रभावन जान॥३५॥

निःशांकित अङ्ग का लक्षण

आप्तकथित जीवादि सब, हैं अनेकान्त स्वरूप।
अन्यनहीं अनविधि नहीं, यहि निःशांकित रूप॥३६॥

३६—(१) सकलमनेकान्तात्मक मिदमुक्तंवस्तुजातमखिलज्ञैः
किमु सत्यमसत्यं वा न जातु शंकेति कर्तव्या॥
(पु० सि० २३)

३६—(२) इदमेवेदृशमेव तत्वं नान्यन्नचान्यथा।
इत्यकम्पाय सांभोवत् सन्मार्गेऽसंशयारुचिः॥
(र० क० ११)

३५—(१) सच्चे देव और कुदेव आदि को परीक्षा कर मानना व पूजना ३५—(२) स्थिति करण अग ३५—(३) प्रभावना अग।

३६—(१) भगवान सर्वज्ञ वीतराग द्वारा कहे हुये जीव आदि सात तत्व। ३६—(२) द्रव्यार्थिक नय से ध्रुवस्वरूप और पर्यायार्थिक नयसे उत्पाद और व्यय स्वरूप वाले जीवादि पदार्थ है। ३६—(३) जीवादि से भिन्न भी पदार्थ किसीर मिथ्याती कल्पित सत्य नही होसक्ते हैं। ३६-(४) और जीवादि पदार्थों का स्वरूप जिनोक्त सिवाय दूसरी तरह भी नही हो सक्ता है, इस प्रकार शंका रहित श्रद्धान का नाम ही निःशंकित अङ्ग है।

निःकांक्षित अङ्ग का लक्षण

दूषितमत, गन्यादिपद, पुत्र धनादिक आस ।
अहिंसा प्रेमी नहिं करे, निःकांक्षित तिम जास ॥३७॥

निर्विचिकित्सित अङ्ग का लक्षण

स्वभाव से अपवित्रतन, रत्नत्रय युत शुद्ध ॥
ग्लानिरहित गुणप्रीति ही, निर्विचिकित्सित बुद्ध ॥३८॥

३७—(१) इह जन्मनि विभवादीन्यमुत्र चक्रित्वकेशवत्वादीन् ।
एकान्तवाददूषितपर समयानपि च नाकांक्षेत् ॥
(पु० सि० २४)

३७—(२) कर्मपरवशे सान्ते दुःखैरन्तरितोदये ।
पापबीजे सुखेऽनास्था श्रद्धानाकांक्षणा स्मृता ।
(र० श्रा० १२)

३८—(१) क्षुत्तृष्णाशीतोष्णप्रभृतिषु नानाविधेषु भावेषु ।
द्रव्येषु पुरीषादिषु विचिकित्सा नैव करणीया ॥
(पु० सि० २५)

३८—(२) स्वभावतोऽशुचौ काये रत्नत्रयपवित्रिते ।
निर्जुगुप्सा गुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सिता ॥
(र० श्रा० १३)

३७—(१) मिथ्यामत (एकान्तमत) ३७—(२) राजा चक्रवर्ति इन्द्र अहमिन्द्र आदि स्थान ३७—(३) चाहना करना।

३८—(१) यह शरीर स्वभाव से ही मलमूत्रादि अपवित्र चीजों से भरा है। ३८—(२) परन्तु सम्यग्दर्शनादि गुणधारियों का शरीर पूज्य के योग्य है। ३८—(३) इस लिये ग्लानि छोड़कर उन सम्यग्दृष्टियों के गुणों में प्रेम करना चाहिये। ३८—(४) इसको निर्विचिकित्सित अङ्ग समझना चाहिये।

अमूढ़दृष्टि अंग का लक्षण

कुपथ,[1] कुमार्गिन[2] को तथा, मन से नाहिं सराहि[3] ।
तन सें नुति,[4] वच थुति[5] मि नहिं, अमूढ़ दृष्टि[6] अंग याहिं

उपगूहन अङ्ग का लक्षण

आत्मधर्म की वृद्धि हित[1] क्षमादि भावन भाय ।
निज गुण, पर अवगुण ढकन, उपगूहन[2] कहलाय ।४०।

३९—(१) लोके शास्त्राभ्यासे समयाभासे च देवता भासे ।
नित्यमपि तत्वरुचिना कर्तव्यममूढ दृष्टित्वम् ॥
(पु० सि० २६)

३९—(२) कापथे पथि दुःखानां कापथस्थेऽप्यसम्मतिः ।
असपृक्तिरनुत्कीर्तिरमूढादृष्टि रुच्यते ।
(र० क० १४)

४०—(१) धर्मोऽभिवर्धनीयः सदात्मनो मार्दवादि भावनया ।
परदोपनिगूहनमपि विधेयमुपबृहणगुणार्थम् ।
(पु० सि० २७)

३९—(१) हिंसा और झूठ आदि के पुष्ट करने वाले खोटे रास्ता खोटे मत ३९—(२) उस खोटे रास्ते पर चलने वाले लोगों की ३९—(३) मन से प्रशंसा नहीं करनी ३९—(४) शरीर से नमस्कार नहीं करना ३९—(५) वचन से स्तुति नहीं करनी ३९—(६) मूढता रहित इस सम्यग्दर्शन के चौथे अंग को पालकर ।

४०—(१) आत्मा के शुद्ध सम्यग्दर्शन आदि धर्म की बढवारी के लिये क्षमा आदि १० धर्मों का बार२ चिन्तवन करना चाहिये ४०—(२) अपने विद्यमान गुणों को मान के साथ न कहना और दूसरों के दोषोंको द्वेष बुद्धि से जाहिर न करना, यह सम्यग्दर्शन का उपगूहन नाम का पाँचवां अंग है ।

स्थितिकरण अङ्ग का लक्षण

समकित[1], ज्ञान, चरित्र से, विचलित[2] निज पर जान।
पुनः धर्म में दृढ़[3] करन, सुस्थिति करण पिछान॥४१॥

वात्सल्य अङ्ग का लक्षण।

सुखद अहिंसाधर्म[1] से, धर्मि जनों से प्रेम।
कपट[2] रहित, गोवत्स सम, पाले वत्सल एम॥४२॥

४१—(१) कामक्रोधमदादिषु चलयितुमुदितेषु वर्त्मनो न्यायात्।
श्रुतमात्मनः परस्य च युक्त्या स्थितिकरणमपि कार्यम्॥
(पु० सि० २८)

४१—(२) दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः।
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थितिकरणमुच्यते॥
(र० क० १६)

४२—(१) अनवरतमहिंसायां शिवसुखलक्ष्मीनिबन्धने धर्मे।
सर्वेष्वपि च सधर्मिषु परमं वात्सल्यमालम्ब्यम्॥
(पु० सि० २९)

४२—(२) स्वयूथ्यान्प्रति सद्भावसनाथापेतकैतवा।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते॥
(र० क० १७)

४१—(१) सम्यग्दर्शनादि से। ४१—(२) अपने आप को या दूसरों को पतित होते हुये समझ कर। ४१—(३) फिर से उसी सम्यग्दर्शनादि धर्म में दृढ़ करना यही छठा अङ्ग जानना चाहिये।

४२—(१) सब जीवों को सुख देने वाले अहिंसा धर्म से और उस धर्म के पालने वालों से प्रेम करना॥ ४२—(२) छल कपट के बिना बे मतलब जैसे गाय अपने बच्चे से प्रेम करती है, इस तरह के आचरण करने को वात्सल्य अङ्ग कहते हैं॥

प्रभावना अङ्ग का लक्षण

¹यथाशक्य रुचि से करे, अहिंसा धर्म प्रचार।
जिस से जिन शासन महत्व, प्रकटे अपरंपार।४३॥

मूढ़ता का लक्षण व भेद

¹जब सत् असत् विवेक बिन, धर्म कल्पना होय।
लोक-देव-गुरु मूढता, त्रिविध कहावे सोय॥ ४४॥

४३—(१) अज्ञानतिमिरव्याप्ति मपाकृत्य यथायथ।
जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः स्यात्प्रभावना॥
(र० क० १८)

४४—(१) आपगासागरस्नान मुच्चयः सिकताश्मनाम्।
गिरिपातोऽग्नि पातश्च लोकमूढं निगद्यते॥

४४—(२) वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसाः।
देवतायदुपासीत देवतामूढमुच्यते॥

४४—(३) सग्रन्थारम्भहिंसानां संसारावर्तवर्तिनाम्।
पाखंडिना पुरस्कारोज्ञेयं पाखंडिमोहनम्॥
(र० क० २५)

४३—(१) जहा तक अपने से बन सके बहुत उत्साह के साथ अहिंसा धर्म का प्रचार करे जिससे जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहे हुये सत्य शास्त्रों का बहुत ज्यादह प्रभाव प्रकट हो यही आठमा प्रभावना अग है।

४४—(१) जब तक यह जीव लोक परिपाटी की अन्ध श्रद्धा से देव कु-देव सुगुरु कुगुरु आदि के विषय में अच्छी तरह परीक्षा न करके, देखा देखी हर एक लौकिक बातोंमें धर्म मान बैठताहै इसीका नाम ही मूढता है। इसके ही लोक मूढता, देव मूढता और गुरु मूढता तीन भेद कहे गये हैं। सम्य ग्दृष्टी ऐसी मूढताओं के कोई काम नहीं करता हैं।

सच्चे देवादि और कुदेवादि की परीक्षा का उपाय

अहिंसाधर्म कसौटि पर, देव शास्त्र गुरु जांच ।
जिन[1] में अति अहिंसा मिले, हे बुध ! उनमें राच ॥४५॥

आठ मदों के नाम

प्रभुता[1] ज्ञान सुजाति कुल, तप धन बल अरु रूप ।
पाय आठ इन मान नहिं, करे समकिती भूप[2] ॥४६॥

४५--(१) सांचो देव सोई जामें दोष को न लेश कोई, वही गुरू जाके उर काहू की न चाह है। सही धर्म वही जहां करुणा प्रधान कही ग्रन्थ जहां आदि अन्त एक सो निवाह है। यही जग रत्न चार इनको परख यार। साचे लेउ झूठे डार नर भौ को लाह है। मानुष विवेक विना पशु के समान गिना तातें यह ठीक बात पारनी सलाह है।

(भू० जै० श०)

४६--(१) ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपः वपुः।
अष्टा वाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः ॥

(र० क० २५)

४६--(२) मानी नाक बडी करन, धन खरचत हैं मूढ़ ।
ते मरि हाथी होत हैं, लटके जहां बड़ी सूंड ॥

(पुष्पारण्य नीति)

४५--(१) राग द्वेषादि को जाहिर करने वाले बाह्य चिन्होंसे युक्त ऐसे खोटे सेढ शीतला आदि देवी, और शस्त्रादिधारी देवताओं को, हिंसापोषक तथा पूर्वपर विरुद्ध वचनोंसे युक्त कुशास्त्रों को, विषय लम्पटी वस्त्रादि

सच्चे देव गुरु और शास्त्र का लक्षण

सत्यदेव[१] सब दोष बिन, सत्य गुरू[२] वे चाह।
सत्यशास्त्र अहिंसा[३] कथक, तीन रतन जग मांह॥४७॥

सात तत्वों के नाम

जीव[१] अजीव के योग से, करे कर्माश्रव बन्ध।
संवर निर्जर कर्म हनि, करे मोक्ष सम्बन्ध॥४८॥

४७—(१) देव गुरु सांचे मान सांचा धर्म हिये आन,
सांचो ही पुरान सुनि सांचे पथ आवरे।
जीवनि की दया पाल झूठ तज चोरी टाल,
देखि ना बिरानी बाल तिसना घटाव रे॥
अपनी बड़ाई पर निन्दा मत करे भाई,
यही चतुराई मद मांस को बचाव रे।
साधि षट् कर्म धीर, संगति में बैठ वीर,
जो है धर्म साधन को तेरे चित चाव रे॥
(भू० जै० श० ४४

४८—(१) जीवाऽजीवाश्रवाःबन्धः, संवरो निर्जरा तथा।
मोक्षश्च सप्ततत्वानि श्रद्धीयन्तेऽर्हदाज्ञया॥
(ध्र० सं० आ० च० ३०)

परिग्रह धारी कुगुरुओं को और हिंसायुक्त क्रियाओं वाले कुधर्मादि की जांच अहिंसा रूपी कसौटी पर करनी चाहिये। जो देवता वा गुरु आदि ऊपर कही हुई परीक्षा की बातों से दूषित होते जाय उन २ को छोड़कर अहिंसा धर्म के सहायक सच्चे देव गुरु शास्त्र और धर्म में ही बुद्धिमानों को श्रद्धान करनी चाहिये।

षट् अनायतन श्रद्धा के पात्र नहीं हो सक्ते

[1]रागी द्वेषी देव पुनि, हिंसा पोषक शास्त्र ।
परिग्रही गुरु इन सेविभी, नहिं बुध! श्रद्धा पात्र॥४९॥

सम्यकत्वादि के दूषक देशादि का आश्रय कभी नहीं लेना चाहिये

[1]जिस से समकित मलिन हो, व्रत दूषित हों[2] आप ।
देश द्रव्य नर कर्म वह, नहिं आश्रये कदाप ॥५०॥

४९—(१) दोससहियंपि देवं जीवं हिंसा रांजुत धम्मं ।
गंथासत्तंच गुरु जो मण्णदि सो हुकुद्दिट्ठी ॥
(स्वा० का० अनु० ३१८ गाथा)

४९—(२) न विरागा न सर्वज्ञा ब्रह्मा विष्णु महेश्वराः । .
राग द्वेष मद क्रोधलोभमोहादि योगतः ॥७१ ॥
रागवन्तो न सर्वज्ञाः यथा प्रकृति मानवाः ।
रागवन्तश्चते सर्वे न सर्वज्ञास्ततःस्फुटम् ॥ ७२॥
आश्लिष्टास्तेऽखिलैर्दोषैः काम कोप भयादिभिः ।
आयुधप्रमदाभूषाकर्मंडल्वादि योगतः ॥ ७३ ॥
(अभि० श्रा० ८ प०७३)

५०—(१) तं देशं तं नरं तत्स्वं, तत्कर्माण्य पिना श्रयेत् ।
मलिनं दर्शनं येन, येन च व्रत दूषणम् ॥
(पद्म० पं० वि०)

४६—(१) प्रभुता—हुकूमत । ४६—(२) इन आठ गर्व की चीजो का सम्यग्दृष्टी जीव कभी घमण्ड नही करता हैं।

४७—(१) भूख प्यास आदि १८ दोष रहित ४७—(२) सांसारिक पाच इन्द्रियों के विषयों की इच्छा से और आरंभ परिग्रह से रहित।

वीतराग सर्वज्ञोक्त ही धर्म प्रमाण करने के योग्य है

वीतराग सर्वज्ञ का, कथित ही धर्म प्रमाण।
क्यों कि पुरुष प्रामाण्य से होते बचन प्रमाण ॥५१॥

पौद्गलिक कर्म का लक्षण

परिणामों का निमित लहि, पुद्गल का असकंध।
फद्गलकर्म शक्ती लिये, करत आतम संवन्ध ॥५२॥

५१—(१) सर्व विद्वीतरागोक्तो, धर्मः सूनृततांव्रजेत्।
प्रामाण्यतो यतः पुंसो, वचः प्रामाण्यमिष्यते ॥
(पद्म० पं० वि०)

५२—(१) जीवकृतं परिणामं निमित्तमात्रं प्रपद्य पुनरन्ये।
स्वयमेव परिणमन्तेऽत्रपुद्गलाः कर्मभावेन ॥
(पुरु० सि० १२)

४७—(३) आदि मध्य और अन्त में सब जगह अहिंसा धर्म का ही कथन करने वाला हो (पूर्वापर विरोध रहितहो)

४८—(१) यह जीव पुरातन (अजीव) जड कर्म के उदय से चतुर्गतियों में दुख देने के कारण भूत नूतन कर्म बन्ध को करता रहता है। और शुद्ध आत्मा के ध्यान से नूतन कर्म बन्ध को रोक कर पुरातन कर्मों का एक देश क्षय करते हुये सम्पूर्ण कर्मों को आत्मा से प्रथक् करने के पश्चात् निराकुल सुख रूप मोक्ष दशा को प्राप्त करता हैं।

४९—(१)एक तो स्त्री वस्त्र शस्त्रादि धारी रागी द्वेषी देवी देवता, दूसरे यज्ञ में अतिथि सत्कारादि कार्यों में हिंसा की पुष्टि करने वाले शास्त्र, तीसरे मोही विषय लम्पटी परिग्रही साधु, और इन तीनों कुदेव कुशास्त्र तथा कुगुरुओं के मानने पूजने वाले तीनों के भक्त ये छहों अनायतन किसी तरह भी बुद्धिमानों के श्रद्धा के पात्र नहीं बन सके हैं।

कर्म के मूल ८ भेद

ज्ञान दर्शनावरणि पुनि, वेदनि मोहनि पर्म ।
आयु नाम हों गोत्र मिलि, अंतराय वसुकर्म ॥५३॥

ज्ञानावरणी कर्म का स्वभाव

जिमि पट[1]आवृतवस्तु को, जानि सकत नहिं कोय ।
ज्ञाना[2]वरणि के उदय से, जीव अज्ञानी होय ॥५४ ॥

५३—(१) आद्योज्ञानदर्शनावरणवेदनीय मोहनीयायुर्नामगो-त्रान्तरायाः।

(तत्वार्थ सूत्र अध्या० अ० ८ सू०

५४—(१) पडपडिहारसिमज्जाहलिचित्तकुलाल भंडयारीणं ।
जह एदेसिं भावा तह वियकम्मा मुणेयव्वा ॥

(गोम्म० कर्म० २१)

संस्कृत छाया।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
पटप्रतीहारासिमद्यहलि चित्र कुलाल भाण्डागारिकाणाम ।
यथा एतेषां भावा तथैव च कर्माणि मन्तव्यानि ॥

५०—(१ जिस २ के आश्रय से सम्यग्दृष्टि गृहस्थ के अपने सम्यग्द-र्शन गुण में या अहिंसादि व्रतों में दोष लगने की सभावना हो उस अयोग्य देश का , अयोग्य द्रव्योपार्जन का, अयोग्य मनुष्यादि की संगति का और अयोग्य आचरण का कभी भी आश्रय ग्रहण न करें, तव ही वह सम्यग्दर्शन निर्दोष रीति पाल सकता है। ५०—(२) आप—अपने

५१—(१) कोई भी रागी द्वेषी तथा असर्वज्ञ देवता सब जीवों के हित करने वाले अहिंसा धर्म के पोषक सम्यग्दर्शनादि के स्वरूप को यथार्थ कथन नहीं कर सकता है। सर्वज्ञ वीतराग देव ही पदार्थों के स्वरूप को यथार्थ प्रति पादन कर सके हैं इस लिये वे ही पूज्य हैं।

दर्शनावरणी कर्म का स्वभाव

यथा सुगम नहिं होन दे, नृप दर्शन दरवान[1]।
तथा दर्शनावरणि[2] भी, देख न दैन जिवान[3] ॥ ५५॥

वेदनीय कर्म का स्वभाव

शहद लपेटी असि[1] चखे, सुख कम दुख अति देत ।
तथा वेदनी कर्म भी, जीवन सुख दुख हेत ॥ ५६ ॥

५२-(१) जीवके अच्छे (शुभ) या बुरे अशुभ, परिणामोंका निमित्तपाकर संसार में सर्वत्र सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूपसे भरे हुये जडपुद्गल परमाणुओंका समूह (स्कन्ध) जीव को आगामी सुख दुखादि फल देने की शक्ति वाला होकर आत्मा के साथ एकमेक (एक क्षेत्रावगाही संबध कर लेता है । और उनका कहा हुआ धर्म ही मानने के योग्य है ।

५३—(१) ज्ञानावरणी आदि ८ कर्म है ।

५४—(१) जैसे किसी कपडे से ढकी हुई कोई चीज । ५४—(२) वैसे ही ज्ञानावरणी कर्म के उदय होने पर जीव को कुछ विशेष ज्ञान नहीं होता है ।

५५—(१) जैसे द्वारपाल ५५—[२] वैसे ही दर्शनावरणी कर्म भी जीवों को पदार्थों का दर्शन नही होने देता है । ५५—(३) जीवों को

५६—(१) शहद भरी हुई तलवार को जीभ से चाटने से जीभ के टुकडे हो जाने से अधिक दुःख और शहद के स्वाद से थोडा सुख होता है वैसे ही थोडे सुखके कारण वेदनीय कर्म के उदय से जीवों को दुख अधिक प्राप्त होता है ।

मोहनीय कर्म का स्वभाव

जैसे मदिरापान से, सुधि बुधि सवहि नसात।
तथा मोह[१] के उदय से, निज हित कुछ न लखात ।५७।

आयु कर्म का स्वभाव

अपराधी नर को यथा, देत काठ में फांस ।
तथा जीव आयू उदय[१] करत चतुर्गति वास ।।५८।।

नाम कर्म का स्वभाव

चित्रकार जैसे लिखे, वहुविध चित्र अनूप ।
नाम करम के उदय[१] से, जीव धरे वहुरूप ।।५९।।

गोत्र कर्म का स्वभाव

ज्यों कुम्हार छोटे वडे, वर्तन लेत वनाय ।
गोत्र उदय[१] से जीव भी, नीच ऊंच कुल पाय ।।६०।

५७—(१) मोहनीय कर्म के तीव्र उदय होने पर यह जीव ऐसा असावधान (गाफिल) हो जाता है जिससे इस को कोई भी अपने आत्महित की बात अच्छी नहीं दिखाई देती है।

५८—(१) जब तक इस जीव के नरक पशु मनुष्य और देव इन चार गतियों में से किसी गति सम्बन्धी आयु का उदय रहता है तब तक जीवित रहता हुआ उसी गति की आयु को भोगता रहता है।

५९—(१) नाम कर्म के उदय से यह जीव चौरासी लाख योनियों में सूक्ष्म वा तरह २ के स्थूल शरीरों को धारण करता रहता है।

६०—(१) गोत्र कर्म के उदय से यह जीव नीच और ऊंच गोत्र में जन्म लेता है।

अन्तराय कर्म का स्वभाव

नृप इच्छा[1] के होत भी, भंडारी नहिं देय ।
अन्तराय उदै जीव यह, धन आदिक न लहेय ॥६१॥

सम्यग्ज्ञान का लक्षण

न्यूनाधिक[1] विपरीत विन, वस्तु यथारथ ज्ञान ।
सम्यक्ती के होत वह, सम्यग्ज्ञान प्रधान ॥ ६२ ॥

सम्यक् चारित्र का लक्षण

अहिंसा पोषक[1] शुभ क्रिया, सम्यक् चारित्र जान ।
पालें इसे श्रावक, मुनी, निज निज शक्ति प्रमान ।६३।

६२— १ अन्यूनमनतिरिक्त याथातथ्यं विनाच विपरीतात् ।
निःसन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥
(रत्न क० ४२)

६३— १ हिंसानृत चौर्येभ्यो मैथुन सेवा परिग्रहाभ्यांच ।
पापप्रणालिकेभ्यो विरतिः संज्ञस्य चारित्रम् ॥
[र० क० ४९]

६३— २ संसार कारण निवृत्तिं प्रत्यागूर्णस्यज्ञानवतः ।
कर्मादाननिमित्तक्रियोपरम सम्यक् चारित्रम् ॥
(सर्वार्थ सि० १ सू० व्याख्या]

६१—(१) जैसे राजा किसी को देने की इच्छा तो करता है। परन्तु भंडारी उसके लाभ होने में विघ्न डाल देता है। उसी प्रकार अन्तराय कर्म के उदय से दान लाभ भोग उप भोग और वीर्य बढ़ाने वाली चीजों के प्राप्त होने में विघ्न पड़ता रहता है।

अहिंसा धर्म के प्रकाशक अन्तिम तीर्थंकर

महावीर भगवान हुये हैं।

अहिंसा धर्म प्रसिद्धि हित श्रावक, मुनिव्रत सार।
परकाशे महावीर प्रभु, जग जीवन हितकार ॥६४॥

६४— १ यतीनां श्रावकाणां च व्रतानि सकलान्यपि।
एकाऽहिंसा प्रसिद्ध्यर्थं कथितानि जिनेश्वरैः ॥
[प० पं० वि०)

६२—(१) संशय विपर्यय और अनध्यवसाय रहित प्रयोजनीय जीवादि पदार्थों का यथार्थ ज्ञान सम्यग्दृष्टि ही जीव के प्रधानता से होता है।

६३—(१) हिंसा झूठ चोरी कुशील और परिग्रहादि पापों से हटा कर अहिंसा धर्मको बढाने वाली अणुव्रत और महाव्रत रूप क्रियाओंको सम्यक्चारित्र कहते हैं। अणुव्रतको श्रावक और महाव्रत को मुनि यथा शक्ति पालन करते हैं।

६४—(१) जैनियों के परम पूज्य चौवीसवें "अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर-भगवान" ईसवी सनसे अनुमान ५२६वर्ष पूर्व निर्वाण का प्राप्त हो चुके हैं। उन्होंने मोक्ष जाने के ३० वर्ष पहले उग्र तपश्चरण कर शुद्धात्मोत्थ शुक्लध्यान के बल से ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मों को नाश कर पूर्ण केवल ज्ञान को प्राप्त किया था। उसी अर्हन्तावस्था में श्री महावीर भगवान ने मगधाधिपति श्री श्रेणिक महाराज के प्रश्न करने पर अहिंसा मई श्रावक और मुनियों के आचरण करने योग्य परम पवित्र मोक्ष मार्ग का उपदेश दिया था। उस ही उपदेश को गणधरादि महर्षियोंने उत्तरोत्तर प्रकाशित करते हुये, शास्त्रों में लिपिबद्ध कर दिया उन्ही केवली प्रणीत शास्त्रों को जैनी प्रमाणीक ग्रंथ मानते हैं। और उसके अनुसार सब को मोक्षका मार्ग बताते हैं। आर्यावर्त के प्रत्येक प्रदेश में विहार कर के महावीर भगवान ने बहुत से भव्यात्माओं को संसार के दुख रूप समुद्र से पारकर अविनाशीक सुख के रास्ते पर लगाया था। और पीछे ३० वर्ष आप अविनाशी मोक्ष धाम को पधारे।

द्वितीयाध्याय सारांश

यह रत्नत्रय धर्म ही करे कर्म वसु चूर ।
"पुष्पारुणा" मोह नींद तजि, धर्म धारि भरपूर ॥ ६५ ॥

॥ इति द्वितीयाध्यायः ॥

६५—(१) इस दूसरे अध्याय में कहा हुआ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक् चारित्र रूप रत्न त्रय धर्म ही उन कहे हुये दुष्ट आठ कर्मों के नाश करने में समर्थ है। इस लिये भव्यात्माओं को चाहिये, कि मोह निद्रा को त्याग कर यथा शक्ति धर्म धारण करके चौरासी लाख योनियों में उत्तम अपने इस मनुष्य जन्म को सफल करें।
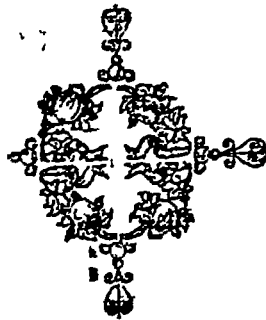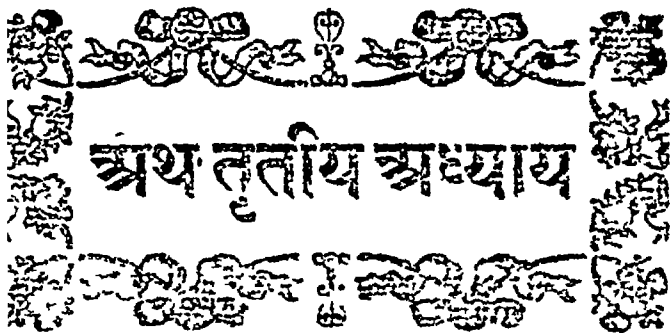
अथ तृतीय अध्याय

हिंसा और अहिंसा का संक्षिप्त स्वरूप

आतम शुध परिणाम की, विकृति हि हिंसा जान।
शुद्ध परणति हि आतम की, अहिंसा तत्व पिछान॥६६॥

६६—१ आत्मपरिणामहिंसन हेतुत्वात्सर्वमेव हिंसैतत्।
अनृतवचनादिकेवलमुदाहृतं शिष्यबोधाय॥

[पु० सि० ४२]

६६—२ अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः॥

[पु० सि० ४४]

६६—(१) आत्मा के शुद्धज्ञान दर्शनादि भावरूप से परिणमने में बाधा डालनेवाली हिंसा होहै। उस आत्मा के पूर्ण शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति, समस्त कर्माभावरूप मोक्ष दशा में होती है वह दशा ही यथार्थ अहिंसा रूप है। जब तक संसारावस्था में उस शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती तब तक आत्मा के शुद्ध परिणामों की निरंतर हिंसा होती ही रहती है उस हिंसा में प्रधान कारण क्रोध मानादि कषायों का उदय है।

हिंसा का विस्तृत लक्षण

प्रमत्त[१] कषाय के योग से, स्वपर प्राण दुख पाय ।
पीड़ा से वा हनन से, हिंसा तभी कहाय ॥ ६७ ॥

कषाय का लक्षण व भेद

आतम[१] शुध परिणाम के, हिंसन हेतु कषाय ।
क्रोधादिक पचीस वे, जग जीवन दुखदाय ॥ ६८ ॥

६७— १ प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ।
[श्री त० सू० सप्त० अ० १३ सू०]

६७— २ अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्संन्निधौ वैर त्यागः ।
[पातञ्जलियोग दर्शन साधन पाद सूत्र ३५]

६७— ३ यत्खलु कषाय योगात्प्राणानां द्रव्यभावरूपाणाम् ।
व्यपरोपणस्य करणं सुनिश्चिता भवति सा हिंसा ॥
(पु० सि० ४३)

६७— ४ तत्राऽहिंसा सर्वदा सर्वथा सर्वभूतानामनभिद्रोहः ।
[व्यासभाष्य]

६८— १) कषत्यात्मानमिति कषायः ॥

६८—(२)क्रोधादिपरिणामः कषति हिनस्ति आत्मानं कुगति प्रापणादिति कषायः ॥
[राजवार्तिक ६ अ० ४ सू०]

६७—(१) क्रोध मानादि कषायों के वश होकर अपने वा दूसरे जीवों के पांच[६] इन्द्रिय, मनबल[७], वचनबल[८], कायबल[९], श्वासोच्छ्वास और आयु[१०], इन दश प्राणों में से यथा सम्भव प्राणों को पीड़ा देकर, वा जान से मार कर, दुख पहुचाने को हिंसा कहते हैं ।

६८—(१) क्रोध मान माया लोभादि २५ कषायें जगत के सब ही जीवों को चारों गतियों में तरह तरह के दुखों के अनुभव कराने में कारणी-भूत होने से कषाय कहे जाते हैं ।

कषायों के २५ नाम

अउ चउ विध क्रोधादि चउ, हास्य ग्लानि भय शोक।
रति अरती त्रय वेद मिलि ये कषाय अघ ओक।।६९।।

अनन्तानुबन्धी आदि कषायों के और ३ वेदों के नाम

अनन्तानुबन्धी प्रथम, अप्रत्य-प्रत्याख्यान।
तुर्य संज्वलन, वेदविध. भार्या क्लीव पुमान।।७०।।

६९—[१]दर्शन चारित्र मोहनीया कषाय कषाय वेदनीयाख्यास्त्रि
द्विनव षोडशभेदाः सम्यक्त्व मिथ्यात्व तदुभयान्य कषायक
षायौ हास्यरत्यरति शोक भय जुगुप्सा स्त्री पुंनपुंसक वेदा
अनन्तानुबन्ध्य प्रत्याख्यान प्रत्याख्यान संज्वलन विक-
ल्पा श्चैकशः क्रोधमान मायालोभाः।

[श्रीतत्वार्थ सूत्र ८ अ० ९ सू०]

६९—(१)अनन्तानुबन्धी कषाय के, अप्रत्याख्यान कषाय प्रत्याख्यान कषाय के और संज्वलन कषाय के क्रोध मान माया और लोभ के भेद से १६ भेद हो जाते हैं और बाकी हास्यादिक कषाय ९ भेद हैं। ये२५कषाय ही जगत के जीवोंको पापसमूह के उत्पन्न कराने में कारण पडते रहते हैं।

७०—(१)अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से यह जीव पंचम गुणस्थान वर्ती श्रावक की थोडीसी क्रियाओंको भी नहीं पाल सक्ता है। इस कषाय के अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान माया और लोभ ये चार भेद हैं। ७०—(२)इसी प्रकार अप्रत्याख्याना वरण कषाय के भी क्रोध मान माया लोभ ४ भेद हैं। ७०—(३)इसी तरह प्रत्याख्यान वरण के भी ४ भेद हैं ७०—(४)चौथे

हिंसा के मुख्य कारण कषायही हैं।

क्योंकि[१] कषाय के होतही, शुद्ध स्वआतम घात ।
पीछे परके प्राण का, होन चहै वा घात ॥ ७१ ॥

कषायों के साथ हिंसाका अन्वयव्यतिरेक

कषाय[१] से सद्भाव के, वध न होत भी पाप ।
वध होत भी अघ नहिं लगे, निष्कषाय यदि आप७२॥

७१—[१] यस्मात्सकषायः सन् हन्त्यात्मा प्रथममात्मनात्मानम् ।
पश्चाज्जायेत नवा, हिंसा प्राण्यन्तराणां तु ॥
[पु० सि० ४७]

७२—(१) व्युत्थानावस्थायां रागादीनां वशप्रवृत्तायाम् । म्रियतां
जीवो मा वा धावत्यग्रे ध्रुवं हिंसा; (पु० सि० ४६)

७२—[२] युक्ताचरणस्य सतो रागाद्यावेशमन्तरेणापि ।
नहि भवति जातु हिंसा प्राणव्यपरोपणादेव ॥
(पु० सि० ४५]

संज्वल कषाय के भी ४ भेद हैं ७०—(५) वेदकषाय के ३ भेद हैं। स्त्रीवेद पुरुषवेद और नपुंसकवेद ७१—(१) क्यों कि यह जीव कषायग्रस्त होते ही अपने आप अपनी आत्मा के शुद्ध स्वभाव का घात करता है। उस कषाय से चाहे दूसरे के परिणामों को दुख पहुंचे या न पहुंचे परंतु कषायग्रस्तजीवको हिंसा जन्य पाप अवश्य लगता है।

७२—(१) आत्मा में क्रोधादि कषायों की मौजूदगीसेही स्वपरप्राणों की पीड़ान होने परभी हिंसा का पाप लगता है। और कषाय रहित होकर सावधानी से काम करते हुये अचानक किसी छोटे जन्तु के मर जावे पर भी उस अप्रमत्ताचारी को हिंसा का पाप नहीं लगता है।

अन्वय व्यतिरेक का दृष्टान्त

जैसे[1] डाक्टर हाथ से, रोगि मरैं नहिं दोष ।
कसाई से कभि नहिं मरे, तब भी लहे अघ कोष ॥७३॥

विचित्र फल दायिनी हिंसा के कार्य का दिग्दर्शन

कुछ[1] हिंसा भी नहिं किये, हिंसा पाप बंधेय ।
हिंसा करि भी द्वितीय पुनि, हिंसा फल न लहेय ॥७४॥

७४—[१]अविधायापि हि हिंसा हिंसाफलभाजन भवत्येकः ।
कृत्वाप्यपरो हिंसा हिंसाफलभाजन न स्यात्
[पु०सि०५१]

७४—[२]मरदुव जियदुव जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा।
पयदस्सणत्थि बन्धो हिंसा मित्तेण समिदस्स ।
[सर्वा०स०टी०]

७३—(१)जैसे सावधानी से इलाज करते हुये भी रोगी के मर जानेपर डाक्टर को कोई दोषी नही ठहराता है। और कसाई के हाथ से कभी किसी वध्य जीव के जिन्दा रहने पर भी वह उसकी हिंसा के पाप समूह से कभी छूट नहीं सक्ता है ।

७४—(१)जैसे किसी जीवने अपने मनमें किसी के मारनेका पक्का इरादाकर लिया इससेउसको उसी समय उस हिंसा का पाप भी बंध चुका,जबतक वहउसको मार नहीं पाया कि उसके पहले ही उस संकल्पित हिंसा के पाप का उदय आगया तो वह पहले ही फल भोग लेता है, इस लिये कहा है कि बैठे बिठाये भी कलुषित परिणाम रखने से पापबंध हुआ करता है और सावधानी से निष्कषाय होकर काम करने से दूसरे किसी सूक्ष्म जीव की अचानक हिंसा हो जाने पर भी पाप नहीं लगता ।

कम[1] हिंसा भी एक को. फले काल अधिकाय।
दूजे को अधिकाय भी, हिंसा कम फलदाय ॥७५॥
मिलकर[1] हिंसा की गई, फल विचित्र दे सोय।
किसि को तो अधिकी फले, किसि को कम फल होय७६

७५—(१) एकस्याल्पा हिंसा ददाति काले फलमनल्पम्।
अन्यस्य महाहिंसा, स्वल्पफला भवति परिपाके॥
(पु० सि० ५२)

७६—(१) एकस्य सैव तीव्रं दिशति फलं सैवमन्दमन्दस्य।
व्रजतिसहकारिणोरपि हिंसावैचित्र्यमत्र फलकाले॥
(पु० सि० ५२)

७५—(१) जो पुरुष बाह्य प्राण हिंसा तो थोडी करता है परन्तु अपने परिणामों को अधिक कलुषित करता है उसको वह तीव्र फल आगामी काल में भोगता है दूसरा अन्तरंग मे मन्द कषाय होते हुये अचानक बाह्य हिंसा अधिक भी कर जाय तो उस को पाप बन्ध कम होता है।

७६—(१) यदि कई मनुष्य किसी जीव को मिलकर वध करें तो उनमें से प्रत्येक को अपने२ तीव्र मध्यम और मन्द कषाय के अनुसार आगामी काल में तीव्र मध्यम और मन्द फल भोगना पड़ेगा।

कोई हिंसा पहले फलें, करते कोई फलाय ।
कोई तो पीछे फले, लखु विचित्र फल भाय ॥७७॥

हिंसा तो एक ही करे, फल भोगत हैं अनेक ।
मिलि के बहु हिंसा करें, फल भोगत वह एक ।७८।

७७—(१) प्रागेव फलति हिंसा, क्रियमाणा फलति फलति चकृतापि
आरभ्यकर्तु मकृतापि फलति हिंसानुभावेन ॥
(पु० सि० ५४)

७८—(१) एकः करोति हिंसां भवन्ति फल भागिनो बहवः ।
बहवो विदधति हिंसां हिंसाफलभुग्भवत्येक, ॥
(पु० सि० ५५)

७७—(१) जैसे किसी ने किसी जीव की हिंसा का संकल्प कर कर्म बंध तो कर लिया परंतु उस जीव की हिंसा करने के अवसर के पहले ही उस संकल्पित कर्म के उदय आने पर (जिस तरह किसी को मारने के इरादा करने वाले मनुष्य के पास सबूत मिलने पर सरकार उसको पहले ही दण्ड देतीहै इसीप्रकार) वह जीवउसकेमारने केपहलेही फल भोग लेताहै। जैसे किसीने किसी की हिंसा करने का संकल्प व इरादा करके कर्म बंध कर लिया और हिंसा करने के समय ही उस संकल्पित पाप का उदय आजाने पर जिस प्रकार किसी को किसी का खून करते देख झट दूसरा भी उसका खून कर देता है इसी प्रकार वह भी उस की हिंसा करते समय फल भोगता है। और किसी हिंसा का फल उस के आगामी काल में उदय आने के पीछे मिलता है। भाइयो ? इसके विचित्र फल को देखकर हिंसा करना छोड़ो।

७८—(१) जैसे जीव हिंसा तो एक ही पुरुष कर रहा हो परंतु उसके देखने वाले जो अपने मन में उस हिंसा का अनुमोदन (ताईद) करते हों या मुख से शाबाशी आदि के वचन निकालते हों वेभी उस हिंसा पाप का फल

विपरीत फल दायिनी हिंसा

एक अहिंसा कर्म भी, हिंसा फल को देय ।
हिंसा भी किसी एक को, अहिंसा रूप फलेय ॥७९॥

विपरीत फल का दृष्टान्त

अहिंसा भाव प्रमादि को, हिंसा का फल देय ।
अप्रमादि मुनि को वही, अहिंसा रूप फलेय ॥८०॥

७९—(१) हिंसाफलमपरस्यतु ददात्यहिंसातु परिणामे ।
इतरस्य पुनर्हिंसा दिशात्यहिंसाफलं नान्यत् ॥
(पु० सि० ५७)

अवश्य भोगते हैं। इसी प्रकार युद्ध के समय राजा अपने सैनिकों को शत्रु पक्ष के मनुष्य व पशुओं के वध करने की आज्ञा देता है सैनिक यदि परतंत्रता के वश होकर हिंसा करें तो उस हिंसा के फल का भागी राजा होता है।

७९—(१) जैसे कोई बाहर में हिंसा न करते हुये किसी के अनिष्ट (बुरा) करने का यत्न कर रहा हो परन्तु उस प्रति पक्षीजीव के पुण्य से कदाचित बुरे की जगह भला भी हो जाय तो भी वह बुराई का फल अनिष्टकर्ता अवश्य भोगता है। इसी प्रकार जैसे किसी वैद्य दयालु से रोगी औषधि करते हुये भी मरजावे तो भी उस वैद्य को अहिंसा का ही फल मिलता है।

८०—(१) जैसे कोई अज्ञानी प्रमाद से चलते समय कीड़े मकोड़ों पर पैर रखते हुये या कोई अज्ञात हिंसा करते हुये अपने को आहिंसक मान बैठता है उसको उसकी काल्पित (फर्जी) आहिंसा का हिंसा रूप फल भोगना पड़ता है। और सावधानी से सब क्रियायें करते हुये मुनि के पैरों आदि के नीचे आकर किसी सूक्ष्म जन्तु के घात होने पर भी मुनि को अहिंसा का ही फल मिलता है।

हिंसानुयायी क्या अहिंसाधर्मी हो सक्ते हैं ?

देव अतिथि यज्ञादि हित, जे नर मारत जीव ।
वे नहिं अहिंसा धर्म के, धारी होंय कदीव ॥ ८१ ॥

८१-(१)देवातिथि मंत्रौषधि पित्रादि निमित्ततोपि सम्पन्ना ।
हिंसा धत्ते नरके किं पुनरिह नान्यथा विहिता ॥

[अमित०श्रा०६ प०२६]

८१—(१)प० तुलसीराम स्वामी सम्पादित मनुस्मृति भाषानुवाद, स्वामी प्रेसमेरठ,सं०१६७४कीछपी देखो,यज्ञार्थपशव.सृष्टा.स्वयमेव स्वयंभुवा यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य तस्मात् यज्ञे वधोऽवधः । ३६ । औषध्यः पशवो वृक्षास्तिर्यञ्चः पक्षिणस्तथा । यज्ञार्थं निधनप्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युत्सृती पुन.।४० (अर्थ) ब्रह्माने स्वयं ही यज्ञकी सिद्धि व वृद्धिके लियेसब पशु बनाये हैं इस लीये यज्ञमेंपशुवध अवध (अहिंसा) ही है(३६)औषधि पशु, वृक्ष, कूर्मादि जीव और पक्षी यज्ञके अर्थ मारे जावे तो उत्तम योनि(उत्तमगति) को प्राप्त होते हैं (४०]

मधुपर्केच यज्ञेच पितृ दैवत कर्मणि। अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवी न्मनु ।४१ ॥[अर्थ] मधु पर्क [शहदआदि मिश्रित वस्तु] यज्ञ, श्राद्ध तथा देवकर्म इन में ही पशुवध करे अन्यत्र नहीं करे यह मनने कहा है ४१। येष्वर्थेषु पशून् हिंसन् वेदतत्वार्थ विद्द्विज. । आत्मानंच पशुं चैव गमयत्युत्तमां गतिम् ४२ (अर्थ) वेद के तत्वार्थ जानने वाला द्विज इन्हीं मधुपर्कादि में पशु हिंसा करताहुआ आपऔर पशुदोनों को उत्तमगति प्राप्त कराता है ।४२ गृहे गुरा वरण्ये वा निवसन्नात्मवान् द्विज । नाऽवेद विहिता हिंसामापद्यपि समाचरेत् ४३ अर्थ गृहस्थाश्रम वा ब्रह्मचर्याश्रम वा वानप्रस्थाश्रम में रहता हुआ जिते

न्द्रिय द्विज अशास्त्रोक्त हिंसा आपत्काल में भी न करे । ४३।

या वेद विहिता हिंसा नियतास्मिश्चराचरे । अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ । ४४ ।

अर्थ—इस जगत में जो वेद विहित हिंसा चराचरमें नियतहै उसको अहिंसा ही जाने क्योंकि वेद से धर्म काही प्रकाश हुआ है । ४४ ।

योऽहिंसाकानि भूतानि हिनस्त्यात्म सुखेच्छया।

सजीवश्च मृतवश्चै न कचित्सुख मेधते । ४५ ।

अर्थ—जो अहिंसक प्राणियों का अपने सुख की इच्छा से मारता है वह पुरुष इस लोक में जी और परलोक में मर कर सुख नहीं पाता । ४५ ॥

[मनुस्मृति पंचमाध्याय ३१ से ४५ तक)

८१—[२] शुश्रूषमाणमेकाग्रमिदं वचन मब्रवीत् ।

ऐणेयंमांसमाहृत्य शालां यक्ष्यामहे वयम् । २२ ॥

अर्थ—रामचन्द्र जी एक चित्त से सेवा करने में चित्तदिये लक्ष्मण जी से बोले है सौमित्रे हम हरिणका मांस लाकर इस पर्णशाला अधिष्ठात्री देवोंकी पूजाकरेंगे।

वभूव च मनोऽल्हादो रामस्यामिततेजसः ।

वैश्वदेव बलिं कृत्वा रौद्रं वैष्णव मेवच । ३१ ॥

पर्णशाला में प्रवेश करते समय अपरिमित तेज सम्पन्न रामचन्द्र जी के मनमें हर्ष उत्पन्न हुआ अनन्तर वैश्व देव के लिये विष्णु और रुद्र जी के लिये [लक्ष्मण जी द्वारा अङ्ग प्रत्यंगों समेत अग्नि में, पकाये हुये उस काले मृग का) बलि प्रदान किया ।

[वाल्मीकी रामायण अयोध्याकांड५६सर्ग २२से३१श्लोक तक देखो]

देवतार्थ बलिदान हिंसा निषेध

देवतार्थ बलिदान में, हिंसा नाहीं होय ।
क्या ऐसा कभि हो सके, अहिंसा धर्मी कोय ॥८२॥

८२—(१) श्री बाल्मीकी रामायण ज्वालाप्रसाद मिश्र, भाषाटीका समेत श्रीवेंकटेश्वर प्रेस बम्बई की छपी (वा० रा० बालकाण्ड १४ सर्ग २६ से ३७ श्लोक तक देखो) चचित्यो राज सिंहस्य संचितः कुशलैर्द्विजैः । गरुडो रुक्म पक्षो वै त्रिगुणोऽष्टादशात्मकः २९ अर्थात्=इस भांति राजसिंह महाराज दशरथ जी के यज्ञ में कुशल ब्राह्मणों ने वेदी बनाई उस पर सोने की ईंटों से पंख बनाय अठारह प्रस्तार का एक गरुड बनाया अश्वमेध यज्ञ में इस की विधि है ॥२६॥ नियुक्तास्तत्र पशवस्तत्तदुद्दिश्य दैवतम् । उरगाः पक्षिणश्चैव यथा शास्त्रं प्रचादिताः ॥३०॥ अर्थ=यज्ञस्थल में शास्त्रानुसार देवताओं के लिये [तत्तद्देवता का संकल्प करके] अनेक प्रकार के सर्प विहङ्ग (पक्षी) तुरङ्ग (घोडे) स्थापन किये ॥३०॥

शामित्रे तु हयस्तत्र तथा जलचराश्च ये ।
ऋषिभिः सर्वमेवैतन्नियुक्तं शास्त्रतस्तदा ॥३१॥

अर्थ—और जल चर आदि जन्तु जहां तक इकट्ठे किये गये थे यज्ञ कराने वाले ऋषियों ने उन्हें बलि देने के लिये यथा स्थान मे शास्त्रानुसार बंधवा दिये ॥३२॥

पशूनां त्रिशतं तत्र यूपेषु नियतं तदा ।
अश्वरत्नोत्तमं तत्र राज्ञो दशरथस्य ह ॥३२॥

अर्थ—पहले कहे हुये थंभों में तीन सौ पशु, और महाराज का अश्व रत्न बंधा था ॥३२॥

कौसल्या तं हयं तत्र परिचर्य समन्ततः ।
कृपाणैर्विशशासैनं त्रिभिः परमया मुदा ॥३३॥

अर्थ—पटरानी कौसल्याजी ने उस अश्व की सब तरह से परिचर्या(सेवा) करके तीन खड्गों से प्रसन्नता पूर्वक उस अश्व रत्न का वध किया।

पतत्रिणा तदा सार्धं सुस्थितेनच चेतसा।
अवसद्रजनी मेकां कौसल्या धर्मकाम्यया ॥३४॥

अर्थ—तदनन्तर कौसल्या जी वहां धर्म प्राप्ति की इच्छा से उस मारे हुवे अश्व के पास एक रात सुस्थित चित्त से बसती हुई।

होताऽध्वर्युस्तथोद्गाता हयेन समयोजयन्।
महिष्या परिवृत्त्याऽथ वा वातामपरांतथा ॥३५॥

अर्थ—अथ होता अध्वर्यु व उद्गाताओं ने राज महिषी व परिवृत्ति सहित वावाता को (क्षत्रिय राजा की वैश्या स्त्री वावाता होती है और परिवृत्ति शूद्रा स्त्री कही जाती है) पक्षीय अश्व के साथ नियोजित किया (आलिंगित कराया) ॥३५॥

पतत्रिणस्तस्य वपामुद्धृत्य नियतेन्द्रियः।
ऋत्विक् परम सम्पन्नः श्रपयामास शास्त्रतः ॥३६॥

अर्थ—तब श्रुति कार्य वित् जितेन्द्रिय ऋत्विज उस घोड़े की चर्बी से शास्त्रानुसार होम करने लगे ॥३६॥

धूमगंधं वपायास्तु जिघ्रन्तिस्म नराधिपः।
यथा कालं यथा न्यायं निर्णुदन् पाप मात्मनः ॥३७॥

अर्थ—नरपति गण यथा समय न्याय पूर्वक अपने पाप काटने के अर्थ चर्बी की गन्धमय धूम की गन्ध सूंघने लगे ॥३७॥

॥ इति दिक् ॥

८२-(२)जाहिरे तौर पर जिन काली मसानी आदि देवी देवताओं पर बकरे भैंसे मुर्गे आदि काट२ कर चढ़ाये जाते हैं क्या ऐसे देवी देवता पूजने के योग्य हैं कदापि नहीं। ये भवानी मसानी आदि के हिंसक पण्डे दिन दहाड़े भक्तोंका धर्म और धन लूटकर भोले लोगों को नरक का सीधा रास्ता बतला रहे हैं। ऐसी देवी और पण्डों को पैसा आदि देना तो दूर रहे दर्शन करना भी महा पाप है।

अतिथि निमित्त जीव हिंसा का निषेध ।

अतिथि जनों के हेत नहिं, जीव घातमें दोष ।
क्या यह अहिंसा धर्म है, लखो दयाके कोष ?॥८३।

यज्ञार्थ जीव बलि हिंसा निषेध

यज्ञ हेत अश्वादि बलि, हिंसा नाहिं कहलात ।
यह भी वाक्य न युक्ति युत, सोचो तजि पक्षपात ॥८४॥

८२-(२) कहै दीन पशु सुन यज्ञ के करैया माहि.
होमत हुताशन में कौन सी बढ़ाई है? ।
स्वर्ग सुख मैं न चहूं 'देहु मुझे' यों न कहूं,
घास खाय रहूं मेरे यही मन आई है ॥
जो तू यह जानत है वेद यों बखानत है,
यज्ञ जरौ जीव पावे स्वर्ग सुख दाई है ।
डारै क्यों न वीर यामें अपने कुटुम्बही को,
मोहिमत जारे जगदीश की दुहाई है ॥
(मू० जै० रा० ४७)

८३-[१] पूज्य निमित्तं घाते छागादीनां न कोपि दोषोऽस्ति ।
इति स प्रधार्य कार्यं नातिथये सत्त्व संज्ञपनम् ॥
[पु० सि० ८१]

८४-(१) यूपं छित्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिर कर्दमम् ।
यद्येवं गम्यते स्वर्गे नरकं केन गम्यते ॥
[महाभारत शान्तिपर्व १०]

८४-[२] राज्ञे ब्राह्मणाय [अतिथये] वा महोक्षं वा महाजं वा पचेत्,
[शतपथब्राह्मण कांड ३ अध्याय ४ ब्राह्मण १]

८४—(३)अथापि ब्राह्मणाय राजन्याय वाऽभ्यागताय वा महोक्ष वा महाज वा पचेदेवमातिथ्य कुर्वन्तीति ॥

[वसिष्ठस्मृति चतु० अध्याय]

अर्थ—ब्राह्मण राजा तथा अतिथिके लिये महोक्ष [बडे बैल] को व (महाज)बडे बकरे को पकावे इस प्रकार अतिथि सत्कार कियाजाताहै॥

८४— ४ दृष्ट्वा रामो मुनीन् शीघ्र प्रत्युत्थाय कृतांजलिः।
पद्या:र्घ्यादिभिरापूज्य गांनिवेद्य यथाविधिः ।

(अध्यात्म रामायण उत्तरकाड सर्ग १ भाषाकर्ता पं०रामस्वरूपशर्मा)

अर्थ—रामने अगस्त्यदि ऋषियोंके आगे शीघ्र खडे होकर और हाथ जोडकर पाद्य अर्घ्य आदि सामग्री से पूजनकर उनको मधुपर्क केलिये शास्त्रोक्तविधि से गौ दी।

८४-(५)गां मधुपर्कार्थी वृषभं व महोक्षंवा महोजंवा श्रोत्रियायोपकल्पेत इति स्मृते प्रमाणाम् ।

८४-(६)"यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाऽशयद्वास्वरौस्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता तेऽपि देवेष्वस्तु"॥

[शुक्ल यजुर्वेद अध्याय २५ मंत्र ३२ पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र हिन्दी भाष्य पृ० १०५४]

(अश्वस्य) अश्व का (यत्) जो (क्रविषः) धनी भूत मांस वाला शोणित (मक्षिका) मक्खियों ने (आश) भक्षण किया है (यत्) जो रुधिर (स्वरौ) खड्ग में था यूप काष्ट में (वा) अथवा (स्वधितौ) (शास) छुरे में(रिप्तम्)लगा हुआ है(शमितुः)मारने वालेके(हस्तयोः) हाथों में (यत्) जो लगा है (ते) तुम्हारे (ताः) वे (सर्वाःअपि) सब भी (देवेषु) देवताओं में (अस्तु) हो अर्थात् तुम्हारा सब भाग देवताओं के योग्य होउ॥

स्थूलजीव हिंसाका निषेध

वहुत[१] हने अघवहु लगै, एक थूल हन लेय।
यह भी हेतु न उचित बुध!, निज सम पर गिन लेय॥८५॥

८५—(१) वहु सत्त्व घात जनिता दशनादरमेक सत्त्वघातोत्थम्।
इत्याकलय्य कार्यं न महासत्त्वस्य हिंसनं जातु
(पु० सि० ८२)

नोट—अब तक जो कुछ देव-यज्ञ और अतिथि आदि के विषय में छपी हुई प्रमाणित पुस्तकों के संस्कृत और उनकी भाषा टीका के प्रमाण यहां पर कौपी टू कौपी संस्कृत मय भाषानुवाद के नकल किये गये हैं हमने इसमें कुछ भी घटाया बढ़ाया नहीं है इससे पाठक पता चला सकते हैं कि अन्य धर्म ग्रन्थों में अहिंसाके साथ कहां तक हिंसा मिलादी गई है। और जैन धर्म के शास्त्रों द्वारा दिये हुये प्रमाणों पर भी पाठक विचार करें, कि जैन शास्त्रों में हिंसा अहिंसा तत्व को किस प्रकार सूक्ष्म और स्थूलता से समझाया गया है। इसको यह पुस्तक ही आप को स्पष्टता से बतलायेगी।

८५—(१) कोई कोई बनावटी दयालु "छोटे २ बहुत से पक्षी या छोटे २ जानवरो के बदले किसी एक बड़े जीव को मार कर खाया जाय तो एक ही जीव की हिंसा का पाप लगेगा" इत्यादि कुतर्क पूर्वक मूर्खों को समझाते हुये अपनी स्वार्थ वासना पूर्ण करते हैं! वे यह नहीं सोचते हैं कि एकेन्द्रिय जीवो की अपेक्षा दोइन्द्री जीव के मारने में असंख्यगुणा पाप है। उससे तीन इन्द्रिय के मारने में, उस से भी चार इन्द्रीय के जीव के मारने में और सब से बढ़कर सज्ञी वा असज्ञी पचेन्द्रिय जीव के घात करने में असंख्य गुणा महा पाप हैं। पचेन्द्रिय में भी जो जीव जितनी अपनी उपयोगिता ज्ञान तथा स्थूल शरीरादि वाला होगा उस के मारने में अधिकाधिक हिंसा का पाप लागेगा।

हिंसक जीव की भी हिंसा का निषेध

हिंसक[१] जीवके घात में, जीव दया बहु होय।
हिंसक का भी बधक वह, क्या हिंसक! नहिं होय ८६॥

अति दुखित जीव हिंसा निषेध।

बहुत[१] दुखित यह जीव कब, जल्दी पावे अन्त।
यह विचारि बुध करत क्या, निज परिजन का अन्त ८७

८६—(१) बहुसत्त्व घातिनोऽमी. जीवन्त उपार्जयन्ति गुरुपापम्।
इत्यनुकम्पां कृत्वा न हिंसनीयाः शरीरिणो हिंस्राः॥
(पु० सि० ८४)

८६—(२)रक्षा भवति बहूनामेकस्यैवास्य जीवहरणेन।
इति मत्वा कर्तव्यं न हिंसनं हिंस्रसत्त्वानाम्॥
(पु० सि० ८३)

८६—(१) कोई २ निर्दई तो साप बाछू भिरड आदि हिंसक जीवों के मारने को ही पुण्य समझते हैं क्यो कि इन को मारकर हम अनेक जीवों की रक्षा कर सकेंगे इस लिये हमको लोग शाबाशी देंगे और पुण्य होगा। उन्हें सोचना चाहियें कि खून में भरा हुआ कपडा खून से ही कभी साफ नही होता वल्कि साफ जल के धोने से होता है। इसी प्रकार उनको दया परिणाम से पुण्य कमाना चाहिये। अगर वे हिंसकों की हिंसा किये जायगे तो वे भी हिंसक बनकर सम्पूर्ण सृष्टि के दुष्ट जीवों को कब तक खतम कर सके हैं। उनको भी दूसरे जन्मों में उसी तरह उनही जीवों के द्वारा अनेक बार मरना पडेगा इस लिये हिंसक को भी हिंसा नहीं करनी चाहिये।

८७—(१) कोई मनुष्य रोग तथा दरिद्रता आदि के दुखों से सताये हुए पशु वा दीन दुखी जीव को उस महान कष्ट से बचाने के अभिप्राय से

अति सुखित जीव हिंसा निषेध

सुखित[1] हने मरि होंयगे, परभव में सुखि जीव।
इस कुतर्क तलवार को, गहत न साधु कदीव ८८॥

समाधिस्थ गुरु हिंसा निषेध

समाधिस्थ[1] गुरु हनन से, गुरु लहे वैकुंठ वास।
पूर्व समय की उक्ति यह, बुध न करे परकास ८९॥

८८—(१)कृच्छ्रेण सुखावाप्ति र्भवन्ति सुखिनो हताः सुखिन एव ।
इति तर्क मंडलाग्रः सुखिनां घाताय नादेय.॥
(पु० सि० ८६)

८९—(१)उपलब्धि सुगतिसाधनसमाधिसारस्य भूयसोऽभ्यासात्
स्वगुरो शिष्येण शिरा न कर्तनीय सुधर्ममभिलषिता॥
(पु० सि० ८७)

दवा सुंघा कर या गोली मारकर उसका वध कर डालते हैं वे यह नहीं वाचते कि इसको तो अपने पूर्वोपार्जित अशुभ कर्मों का फल भोगना ही है मर कर के दूसरे जन्ममें भी दुख भोगना पड़ेगा। जैसे वे दुख दूर करने का प्रयत्न अपने कुटुम्बियों के बचाने के लिये करते हैं। न कि दवा सुंघा कर या गोली से उन कुटुम्बियों को मार डालते हैं। वैसा उन असहाय और दीन दुखियो के साथ में अगर करेंतो उन कें दयालुपने का पता लगे।

८८—(१) पूर्व काळ में कितने ही लोग इस विचार से सुखी जीवों को मार दिया करते थे कि जैसे यह यहा सुखी है वैसा परलोक में भी सुख पावेगा। और मारने से हमको पुण्य होगा। ये विचार भी मूर्खों के कुतर्कता लिये हुये थे उस कुतर्क तलवार का प्रयोग भी अपने परिवारादि को छोड़कर दूंसरों के मालमतादि हरनें के लिये या किसी स्वार्थ के वश हो कर किया करते थे साधु पुरुष तो ऐसा नीच काम कभी नहीं करते हैं।

आत्म घात निषेध

विशेष हेतु के होतभी, वुध न करत निज नास ।
अग्न्यादिक अपघात से, निश्चय नरक निवास ॥ १० ॥

६०—(१) आत्मवधो जीववधस्तस्य च रक्षात्मनो भवति रक्षा ।
आत्मा नहि हन्तव्यस्तस्य वधस्तेन मोक्तव्यः
(अमि० अ० ६ प० ३०),

६०—(२) योहि कषायाविष्टकुम्भकजलधूमकेतुविषशस्त्रैः ॥
व्यपरोपयति प्राणान् तस्य स्यान्सत्यमात्मवधः ॥
(सागा०धृ० ८ अ० टि० श्लो०)

६०—(३) विज्ञानेनाहिंसामात्माधारानिपात्यते नरके ।
स्वाधारा नहि शाखां छिन्दाना किं पतति भूमौ ॥
(अमि० अ० ६ प० १६)

६०—(४) दृष्ट्वा परं पुरस्तादशनाय क्षामकुक्षिमायान्तम् ।
निजमांसदानरभसादालभनीयो न चात्मापि ॥
(पु० सि० ८१)

८९—(१) प्राचीन समय में कितने ही लोग अपने समाधिस्थ गुरु को स्वर्ग पहुंचाने की इच्छा से मार डालते थे ऐसा काम भी उनके दुष्ट शिष्य या दुष्टात्मा भक्त ही करते थे बुद्धिमानों को सोचना चाहिये कि क्या कोई किसी को इस तरह स्वर्गादि में पहुचा सकता है । यदि पहुचा सका है तो ऐसा कर के वह खुद क्यों नहीं चला जाता ।

९०—(१) जो मनुष्य अपने परिवार आदि में किसी के साथ लडाई अपमानादि विशेष कारण पाकर अपने जिन्दा रहने को बोझ समझ करके या सास रोक कर, जल में डूब कर, विष खाकर; अपना गला घोट कर, मकानादि से गिर कर वा अपने प्रियजनके असह्य वियोग से अधीर होकर अग्नि वा चिता में जलकर, इत्यादि नीच उपायों से अपनी आत्मा का वध

सामान्य जीव हिंसा निषेध

फूंट घट फट से चटक सम, जीव मुक्त हो जाय।
खारफटिकसिद्धान्त यह: मत वरतो दुख दाय ॥ ९१॥

अहिंसा भाव (जीवदया) विना जपतपादि सब व्यर्थ हैं।

अहिंसा बिन जप तप सकल, व्यर्थ, न पापनशाहिं।
जिमि तारागण चन्द बिन, तम न हरें निशि मांहिं ॥९२॥

९१—(१)धनलवपिपासितानां विनेयविश्वासनाय दर्शयताम्।
झटितिघट चटक मोक्ष श्रद्धेयं नैव खारपटिकानाम् ॥
(पु० सि० ८८)

९२—(१)जीवत्राणेन विना व्रतानि कर्माणि नो निरस्यन्ति।
चन्द्रेण विना नक्षैं हन्यन्ते तिमिरजालानि ॥
(अमि० श्रा० ६ अ० १४)

करलेता है। वहजीव अहिंसा धर्मकी आधार भूत आत्माका वधकर अवश्य ही असंख्य त समय तक नरकों के दुख भोगता है। ऐसा जान कर कभी भी अपना अपघात नहीं करना चाहिये। और न उन धर्म शास्त्रों या साधुओं का श्रद्धान करना चाहिये जो आत्मघात करने का उपदेश देते हों।

९१—(१) खार पटिकों (कत्थे के रंग का कपड़ा पहिननेवाले सन्यासियों) के मत के समान शिष्य तथा धनिक भक्तादिकों को काशी करवट "काश्यां मरणान्मुक्तिः" इत्यादि मोक्ष जाने का मिथ्या प्रलोभन देकर उनकी आत्मा का वध नहीं करना चाहिये। क्यों कि खारपटिकों का यह मत है कि इस शरीर रूपी घड़े के नाश हो जाने से झट इसके अन्दर के चिड़ियारूप जीव के निकल जाने से उस जीव को मोक्ष हो जाती है। सच है अज्ञानी दया धर्म हीन स्वार्थवश क्या२ दुष्कृत्य करने के लिये उतारू नहीं होते हैं।

पक्षपात रहित विचार की आवश्यकता

भो बुध? अहिंसा रहस्य को, सोचो तज पक्षपात ।
सब जीवन की जान को, लखो आप सम भ्रात १३ ॥

विशेष वक्तव्य

अहिंसा तत्व के लखन की, यदि हो अधिकी चाय ।
देखो जैन सिद्धान्त को, सब संशय मिट जाय ॥१४॥

६४—(१) को नाम विशन्ति मोहनयभंगविशारदानुपास्य गुरून् ।
विदित जिनमतरहस्यः श्रयन्नहिंसां विशुद्धमतिः ॥
(पु० सि० ६०)

६३—(१) हे विद्वानो ! स्वमतपक्षपात को छोड कर अहिंसा के रहस्य को समझो और "आत्मवत्सर्वभूतेषु दया कुर्वन्ति साधवः" इस नीतिका अवलम्बन करते हुये एकान्त में अच्छी तरह सोचो । निष्कर्ष यही निकलेगा कि हिंसा और अहिंसा जीवो के अपने २ अच्छे और बुरे परिणामों के आधीन ही होती है इस में विल्कुल भी मिथ्यापना नही है ।

६४—(१) जिन अहिंसा प्रेमी विद्वानो को जैन धर्म के अहिंसाविषय के प्रति पादन करने वाले ग्रन्थो के देखनेकी इच्छा हो तो उनको इस पुस्तक में प्रमाण के तौर पर दिये हुये जैन ग्रन्थों को तथा और भी जैन ग्रंथोको जैन पुस्तकालयों से मंगाकर अपने हिंसा अहिंसा विषय के भ्रम को दूर कर सच्चे अहिंसा धर्मानुयायी बननेका प्रयत्न करना चाहिये । यदि पक्षपात वश "बाबा वाक्यं प्रमाणम्,, इस लोकोक्तिपर दृढ रहनाही स्वीकार है तो अब आपकी इच्छा है । यदि आपको कुछ अहिंसा धर्म से प्रेम है तो सब मतोके धर्म शास्त्रों से इस पुस्तकके अन्वेषणकी तरह लोकमें अहिंसाधर्म का सप्रमाण प्रकाश डालना चाहिये जिससे संसार के जीव सुमार्ग पर लगकर अपना २ कल्याण कर सकें। और जो मेरी गल्ती या यथार्थता हो वह मुझे पत्रद्वारा सूचित करें।

तृतीय अध्याय सारांश

इमि विधर्मि सद्धर्म में, हिंसा दई मिलाय ।
"पुष्पाहुणा" संक्षिप्त वह, लिखी सु अवसर पाय ।१५।

॥ इति तृतीयाध्यायः ॥

नोट—मान्यवर अहिंसा प्रेमी हिन्दू मुसलमान व ईसाई भाइयो ! आप इस पुस्तक के प्रत्येक अध्याय को बहुत अच्छी तरह नीचे की टिप्पणी के साथ समझने का प्रयत्न करो । यदि कोई बात समझ में न आवे तो मुझ (पुस्तक रचयिता और टिप्पणी कर्ता) से पत्र द्वारा पूछने की कृपा करो । या किसी जैन विद्वान से या जैन शास्त्रों को पढ़कर अपनी शंकाओं का समाधान कर के विशेष अहिंसा धर्मी बनने का प्रयत्न करो, तभी मैं इस अपने तुच्छ प्रयत्न को सफल समझूंगा ।

सामान्य गृहस्थाश्रम कर्तव्य

गृहिणी युतहि गृहस्थ जन. द्वितीयाश्रम के योग।
दैनिक कर्म, सु-मूलगुण, पालें, तजि अघजोग १६॥

१६—(१) गृहिणी मेव गृहमाहुर्न कुड्यकटसंहतिम्
(इति सामान्य नीतिः)

१६—(२) तत्वाभ्यासः स्वकीयव्रतिरतिरमलं दर्शनं यत्र पूज्यं।
तद्गार्हस्थ्य बुधानां मितरदिह पुनर्दुःखदो मोह पाशः
(पद्म० पं० वि० प्र० अ० १३)

१६—(१) १६ से २५ वर्ष तक की अवस्था के भीतर २ ब्रह्मचर्याश्रम में विद्या उपार्जनकर जब युवक विवाह क्रियानामक १७ वें संस्कार पूर्वक अपनी सह धर्मिणी के साथ गृह में बसता है तब से उसका दूसरा आश्रम गृहस्थाश्रम प्रारंभ होता है। तब से उसको देवपूजनादि षटकर्म आठमूलगुणों को धारते हुये सप्तव्यसन के त्याग की दीक्षा से दीक्षित होकर पुत्र और प्रपौत्र की उत्पत्ति तक न्याय पूर्वक गृहस्थाश्रम का निर्वाह करना पड़ता है जब वह सच्चे देवगुरु और शास्त्र पर विश्वास करता हुआ उक्त आचरणों को पालने का अभ्यासी हो जाता है तब उस गृहस्थ को व्यवहार सम्यग्दृष्टी तथा पाक्षिक श्रावक के नाम से कहते हैं।

१६—(२) सूर्योदय से पहले उठकर जपके मंत्र पंच नमस्कार। धर्म कर्म षट नियम व्रत को पालो नित प्रति सोच विचार। इष्टदेव गुरुवंदन को कर शास्त्र पढ़ो नितशुद्ध उचार। धर्मी होकर इस विधि से तुम नित्यकर्म का करो प्रचार (पुष्पाञ्जलि पद्यमाला)

गृहस्थ के दैनिक षट् आवश्यककर्म

देवयजन, गुरु सेव, नित, धर्म शास्त्रस्वाध्याय ।
संयम, तप, चउदान युत, गृही षट् कर्म कराय १७॥

सच्चे देव के पूजने की विधि और उससे लाभ

वीतराग सर्वज्ञ को, पूजे नित चित लाय ।
जल-फलादि वसुद्रव्य से, पूजत पाप नशाय ॥१८॥

१७—(१)देवपूजा गुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः ।
दानं चेति गृहस्थानां षट् कर्माणि दिने दिने
(पद्म० पं० ६ श्लो०७)

१७—(२)प्रातरुत्थाय कर्तव्यं देवतागुरुदर्शनम् ।
भक्त्या तद्वन्दना कार्या धर्मश्रुतिरुपासकैः ।
(१६) पश्चादन्यानि कार्याणि कर्तव्यानि यतो बुधैः ।
धर्मार्थकामम्क्षाणामादौ धर्मः प्रकीर्तितः
(पद्म०६श्लो०१७)

१८—(१)प्रमदा भाषते कामं द्वेषमायुधसंग्रहः ।
अक्षसूत्रादिकं मोहं शौचाभावं कमंडलुः ॥७४॥
वीतरागश्च सर्वज्ञो जिन एवावशिष्यते ।
अपरेषामशेषाणां रागद्वेषादिदोषतः ॥
(श्रमि० श्र० ४ पं० ७०)

१८—(१) जिन देवताओं के साथ में स्त्री है। वह स्त्री उनके अन्दर के कामादिक विचारों को खड्ग, त्रिशूलादि का धारण उनके मनोगत द्वेष भाव को, रुण्ड मुण्डों की माला हिंसा और मोह जन्य कार्यों को, और कपाल कमंडल आदि उन के अन्तर्गत अपवित्रता को जाहिर करते हैं। ऐसे देवी देवता हमारा किसी तरह कल्याण नहीं कर सक्ते हैं। क्योंकि वे भी हमारी तरह स्त्री आदि के जाल में फसे हुए हैं जो स्वयं जल में डूब रहा है वह दूसरों को किस तरह डूबने से बचा सक्ता है।

सच्चे वीतरागी साधु के सेवने का उपदेश

विषय[१] चाह जिस चित्त नहिं नाहिं परिग्रह साथ।
ज्ञानी ध्यानी साधुको, सेवत बुध ? नमि माथ ॥९९॥

अहिंसापोषक शास्त्र स्वाध्याय से लाभ

गृहस्थ[१] को नित चाहिये, धर्म शास्त्र स्वाध्याय ।
जिससे संचित अघनशे, धर्मज्ञान बढि जाय॥१००॥

९९—(१) विषयाशावशातीतो निरारंभोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यान तपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते (र० क० श्रा० १०)
गुरुदेव प्रसादेन लभ्यते ज्ञानलोचनम् ।
समस्तं दृश्यते येन हस्तरेखेव निस्तुषम् ॥
(पद्म० पं० ६ श्र० १८)

१००—(१) या वेदविहिता हिंसा नियतास्मिंश्चराचरे ।
अहिंसामेवतां विद्याद्वेदाद्धर्मोहि निर्वभौ ॥
(मनु० ५ अ० ४४)

९९—(१) जो आदमी प्राय "नारि मुई घर संपति नासी मूड मुंडाय भये सन्यासी" इस कारण से साधु वा सन्यासी बन जाते हैं। जिनको स्वयं आत्मा वा परमात्मा के स्वरूप को बतलाने वाले शास्त्रो का कुछ भी ज्ञान नहीं होता है वे केवल विषयों की इच्छाके पूरण करने के लिये चीमटा दंड झोळा खप्पर सवारी अन्न वस्त्रादि नाना परिग्रह रखते हैं वे साधु वा सन्यासी भी क्या दूसरो को धर्म का मार्ग दिखला सके हैं बल्कि वे भक्तो से पैसा लूटकर गांजा सुल्फा वेश्या सेवनादि विषयो में मग्न रह कर आपतो नरक का रास्ता लेते ही हैं परंतु भक्तों को भी साथ में पकड कर लेजाते हैं। इस लिये वैसोको छोड सच्चे साधू की सेवा करनी चाहिये।

संयम पालने से लाभ।

दयापाल षट्काय नित, वश करि इन्द्रियथोक
इमविधि संयम मे करे, पापाश्रव को रोक॥ १०१॥

१००—(२)हिंसादिवादकत्वेन न वेदा धर्म कांक्षिणि।
वृकोपदेशवन्न प्रमाणीक्रियते बुधैः॥
(अमि०श्रा०४अ०६१)

१००—(३)स्वाध्यायाज्ज्ञान वृद्धिः स्यात्तस्यां वैराग्य मुत्तमम्।
तस्मात्स्यात्परि त्यागस्ततश्चित्त निरोधनम्॥
तस्मिन्नुध्यानं प्रजायेत तनश्चात्म प्रकाशनम्।
तत्रकर्म क्षयावश्य स एव परमं पदम्॥
(धर्म०१अ०२१३-२१४)

१०१—(१)मनः करण मरोधस्त्रसस्थावर पालनम्।
संयमः सद्गृहीतं च स्वयोग्यं पालयेत्सदा
(२१७) मूतेनूत्वांन कुत्रापि संयमो देहिना भवेत्
मत्वेत्येकापि कालस्य कला नेया न तं विना।
(ध०स०१अ०२२३)

१००—(१)गृहस्थ को हमेशा धर्मप्रतिपादक शास्त्रों का स्वाध्याय करना चाहिये जिस से स्वपरात्माओं का कल्याण हो उस वेद से भी कोई लाभ नहीं जिसमें जीवोंकी हिंसा जायज करार दीगई है इसीलिये उसको बुद्धिमान हिंसक वाक्यकी तरह प्रमाणभूत नहीं मानते। अहिंसापोषक ही वेद जगत्कल्याण कारी हो सकता है।

१०१—(१)त्रस और पांच स्थावर कायके जीवों की रक्षा करने ने और पांच इन्द्री और मनको वशमें करनेसे पाप क्रियाओं से उत्पन्न हुये पाप समूहके आश्रवको रोकने वाली क्रियाओं को संयम कहते हैं। उस संयम को गृहस्थ और मुनि अपनी शक्तिके अनुसार विकल [अपूर्ण] रूप से और सकल [संपूर्ण] रूप से पालन करते हैं।

बारह विधि तपस्या करने से लाभ।

अनशनादि षट् बाह्य तप, प्रायश्चित श्रुत धार।
जिससे होवे कर्म क्षय, आतम शुद्धि अपार॥१०२॥

१०२— १ इच्छानिरोधस्तप इति तपसो सामान्य लक्षणम्।
१०२—[२] अनशनावमौदर्य वृत्ति परिसंख्यानरसपरित्यागवि-
विक्तशय्यासनकायक्लेशाः बाह्य तपः १९ प्रायश्चित्त विनय
वैय्यावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम्॥
[तत्वार्थ सूत्र ९ अ० २० सू०]

१०२—(१) बारह प्रकार के तप करने से नवीन कर्मों का बंधन न होकर पूर्व बद्ध कर्मों का क्षय होता रहता है. चतुर्विध आहार का त्याग उप वास या अनशन तप है १ भूख से कम खाना अवमौदर्य तप है २ इतने नियत समय तक इतने ही नियत पदार्थ खाने का संकल्प करना वृत्तिपरि-संख्यान तप है ३। घृत तैल दही दूध मीठा नमक इन ६ रसों में से कभी २ एक दो आदि का छोड़ना रस परित्याग तप है ४। एकान्त में आसन बि-छाकर या शुद्ध भूमि में सोना विविक्तशय्यासन तप है ५। धर्मार्थ शारी-रिक कष्टों के सहने की आदत डालना कायक्लेश तप है ६॥ ये ६ बाह्य तप हैं अपने से किये हुए ज्ञात दोषों का प्रतिदिन योग्य दंड लेना प्रायश्चित तप है १ देव गुरु शास्त्र तथा सम्यग्दर्शनादि की यथा योग्य विनय करना विनय तप है २ रोगी तथा अशक्त मुनि व श्रावकादि की सेवा टहल करना वैय्यावृत्य तप है ३ धर्म शास्त्रों को आप पढ़ना व दूसरों को पढ़ाना व पढ़कर सुनाना स्वाध्याय तप है ४ शरीर को और खान पानादि विषयों की ममता का त्या-गना व्युत्सर्ग तप है ५ एक ही ध्येय पर एकाग्रता से चित्त जमाना ध्यान तप है ६ ये ६। अन्तरंग तप हैं।

चतुर्विध दान से लाभ।

आहारौषध अभय युत, शास्त्र दान नित देय।
जिससे सफल स्वजन्म हो, जग कीर्ति प्रकटेय॥१०३॥

गृहस्थ के अहिंसा पोषक ८ मूल गुण

मद्य मांस मधु निशि अशन, उदुम्बरफल परित्याग।
जीव दया जल छान पिय, देवयजन अनुराग॥१०४॥

१०३—[१] अभयाहारभैषज्यशास्त्रदाने हि यत्कृते।
ऋषीणां जायते सौख्यं गृही श्लाध्यः कथं न सः॥२३॥
सत्पात्रेषु यथाशक्ति दानं देयं गृहस्थितैः।
दानहीना भवेत्तेषां निष्फलैव गृहस्थता॥
[पद्म० ६ श्लो० ३१]

१०४—मद्यपलमधुनिशासन, पंचफली विरति पंचकाप्तनुती।
जीवदया जलगालनमिति च क्वचिदष्टमूलगुणाः॥
(सा० ध० २ अ० १८)

१०४—(२) मद्योदुम्बर पंचकामिषमधुत्यागाः कृपा प्राणिनां
नक्तं भुक्तिविमुक्तिराप्तविनुतिस्तोयं सुवस्त्रस्नुतम्॥
एतेऽष्टौ प्रगुणा गुणा गणधरैः आगारिणां कीर्तिता,
एकेनाप्यमुना विना यदि भवेद् भूतो न गेहाश्रमी॥
(सागा० धर्म० टि० श्लोक)

१०३—(१) गृहस्थ के धन पाने का यही सफलता है कि वह नित्य कुछ न कुछ यथा शक्ति सुपात्रों को भक्ति से, कुपात्र वा अपात्र दीन दुखियों को करुणा दृष्टि से भोजन देवे, निर्भय करे, औषधि देवे और ज्ञानोपयोगी सामग्री देवें, इन चार प्रकार के दानो से उसका जीवन और धन सफल होकर संसार में उसकी निर्मल कीर्ति फैल जाती है।

द्विज कब मूलगुण गृहण करने के योग्य होता है

यज्ञोपवीती तवहि द्विज, योग्य मूल गुण होय।
यावज्जीवन को तजे, थूल पाप सब कोय॥ १०५॥

१०४—(२) आसर्वचतुतिर्जीवदयासलिलगालनम्।

त्रिमद्यादि निशाहारो दुम्बराणां च वर्जनम् ॥

(ध० सं० श्रा० ५ अ० १५५)

१०५—(१) यावज्जीवमिति त्यक्त्वा महापापानि शुद्धधीः।

जिनधर्म श्रुतेर्योग्य स्यात्कृतोपनयो द्विज।

(मा०ध०२अ०१९)

१०४—(१) सद्गृहस्थ के अहिंसा धर्म रूपी वृक्ष की जड़ों को पुष्ट और दृढ करने वाले नीचे लिखे आठ मूल गुण ऋषि महर्षियों ने कहे हैं। शराब न पीना १ मांस न खाना २ शहद न खाना ३ रात को भोजन न करना ४ पांच उदुम्बर अभक्ष्य फलों को न खाना ५ और त्रस स्थावर सबंधी छै काय के जीवों की दया पालना ७ हमेशा पानी छानकर पीना ७ और नित्य अपने इष्ट सर्वज्ञ देव की पूजा दर्शन भक्ति विनय तथा स्तुति करना ८ इन आठो को अहिंसापोषक आठ मूल गुण कहते हैं। इन आठ मूलगुणों के धारण किये बिना कोई भी मनुष्य वा मतावलम्बी अहिंसा धर्मी होने का अधिकारी नहीं हो सकता है, जब मूल में प्रथम की पांचों चीजों का त्याग और अन्त के तीन नियमोंका पालन ही न हुआ तो व्यर्थ ही अहिंसा धर्मी होने की डींगमारना है। इस लिये अहिंसा धर्मकी पक्की जड़ जमानेके लिये इनआठ मूल गुणों को धारना चाहिये।

मद्यपान से हानि और हिंसा-दोष

मद्य पान मन मुग्ध हो, मोहित भूले धर्म।
धर्म भूलि मद्यप करें, निधड़क हिंसा कर्म ॥ १०६ ॥

१०५—(२)ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्या त्रयो वर्णा द्विजातयः"।
द्वाभ्यांजन्म संस्काराभ्यां जायत उत्पद्यते इति द्विजस्यव्युत्पत्तिः
१०६—(१)मद्यं मोहयन्ति मनो मोहितचित्तस्तु विस्मरति धर्मं।
विस्मृतधर्मा जीवो हिंसामविशङ्कमाचरति।
(पु० सि० ६२)
१०६—(२)गायति भ्रमति वक्तिगद्गद रौतिधावति विगाहतेक्लमम्
हंति हृष्यति वुद्धयतेहितं, मद्यमोहितमतिर्विषीदति।
(अमि० ७०८)

१०५—(१)गृहस्थ धर्म के अनुसार चौदहवीं उपनीति क्रिया [जनेऊ संस्कार] हो जाने के बाद ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों ही द्विज संज्ञा वाले मनुष्य, देव गुरुकी साक्षी पूर्वक पहले कहे हुये अहिंसा-पोषक आठमूल गुणों के ग्रहण करने के योग्य होते हैं और उन को आठमूल गुणधारते समयही स्थूल२ सारेही पापो के त्यागने का जीवन भरके लिये नियम कर लेना चाहिये जैसा कि इस अध्याय के आखीर में प्रतिज्ञा विधि के नियम लिखे गये हैं ॥

१०६—(१)शराब पीनेसे शराबी का मन-मुग्ध (गाफिल) होजाता है गाफिल होतेही दैनिक सब धर्म और कर्मों को भूल जाता है।-और जब आत्मा-से धर्म का विचार हटगया तब हिंसा सम्बन्धी मांस शराब आदि कामों के करने में निडर होकर प्रवृत्त होता है ॥

मद्यपान में जीव हिंसा दोष

सड़ैका बहुत शराब में, उपजत विनशत जीव ।
पीवत हिंसा लगति ध्रुव; अधगमि बनत सदीव॥१०७॥

मांस भक्षण में जीव हिंसा पाप

जीवघात बिन मांस की, उत्पति कबहुं न होय ।
मांस खान से जीव वह, हिंसा दोषी होय ॥१०८॥

१०७—(१) रसजानां च बहूनां जीवानांयोनिरिष्यते मद्य ।
मद्य भजतस्तेषां हिंसा संजायतेऽवश्यम् ॥
(पु० सि० ६३)

१०७—(२)ये भवन्ति विविधा शरीरिणस्तत्र सूक्ष्मवपुषोरसांगिका
तेऽखिला झटिति यांति पंचतां निन्दितस्य सरकस्य पानतः
(अमि० श्रा० ५ प० ६)

१०८—(१)न विना प्राणिविघातान् मांसस्यात्पत्तिरिष्यते यस्मात्
मांसं भजतस्तस्मात् प्रसरत्यनिवारिता हिंसा॥
(पु० सि० ६५)

१०८ —(२) नाऽकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥
(मनु० ५ श्र० ४८)

मांसं भक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम्
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रविदन्ति मनीषिणः ॥
(मनु० ५ श्र० ५५)

मृतक मांस भक्षण में भी हिंसा है

मृततन[1] में भी जीव त्रस उपजत मरत अनेक।
अतः मृतक तन खान से, जीव बचत नहिं एक १०६

१०८—(२)न मांस भक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥
(मनु० ५ अ० ५६)

१०६— (१)यदपि किल भवति मांसं स्वयमेव मृतस्य महिषवृषभादेः
तत्रापि भवति हिंसा तदाश्रितनिगोतनिर्मथनात् ।
(पु०सि०६६)

१०७—(१)जबकि शराब महुआ अंगूर और गुड आदि चीजों को सड़ाकर बनाई जाती है सड़ाई गई चीजो में असंख्याते त्रस जीव उत्पन्न होते और मरते रहते हैं उसके पीते समय तमाम त्रस जीव मरजाते है इसलिये हिंसा का पाप लगता है।

१०८—(२)मास किसी त्रसजीव को मारे बिना या स्वयं मरे हुये के शरीर विदारे बिना किसी वृक्षादिसे तो उत्पन्न होता ही नहीं है। यहनिश्चय समझ लेना चाहिये कि जो इस जनममें जिस २ के मासको खाता है दूसरों जनमो में उस के बदले में उस २ जीव से हजारो बार मारा और खाया जायगा इसलिये मास खाना छोड़ देना चाहिये।

१०६—(१)मरेहुये जीवके शरीर में मरने केबाद ही सूक्ष्मजातिके अनेक त्रसपंचेन्द्रिय जीव उस में उत्पन्न हो होकर मरते रहते हैं ज्यादह देर होने पर स्थूलत्रस जीवभी उसमें चलते फिरते दिखलाई पडते हैं हा!हा? अभक्ष्य भोजी ऐसी निन्द्य चीजो को अपने पेट में कैसे रखलेते हैं। उनका पेट ही कितने ही जीवो का कबरगाह बन जाता है।

षट् काय वाले त्रस और स्थावर जीव

१

भू जल अगिनी पवन अरु, बनस्पति थावर जीव।
द्वीन्द्रियादि पच इन्द्रि तक, कहलावत त्रस जीव ११०

मांस जन्य हिंसा के ८ दोषी

हिंसाज्ञा सम्मति तथा, काटे वेचि खरीद।
पाकि परोसे खाय जो, हिंसक इते कहीद ॥१११॥

११०—(१)पृथिव्यप्तेजो वायु वनस्पतयः स्थावराः।
द्वीन्द्रियादयायसा ॥
(श्रीतत्वा० सू २ अ० १३ सू० १४ सू०)

१११—(१)अनुमंता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः॥
(मनु ५ अ० ५१)

११०—(१)पृथिवीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय ये पाच स्थावर काय के जीव हैं और दो इन्द्री से ५ इन्द्री तक के त्रस काय के जीव हैं।

१११—(१)हिंसा करने की आज्ञा देने वाला, राय देने वाला, काटने वाला, मांस बेच ने वाला, खरीदने वाला, पकाने वाला, परोसने वाला और मांस खाने वाला ये आठो ही अपनी तीव्रमध्यमादि कषायोके अनुसार हिंसापाप के भागी होते हैं।

मधुभक्षण में भी जीवहिंसा होती है

[१] मधु मक्खिन की लार से, शहद कि उपज विख्यात।
अराडें बच्चे घातकर, बेचत निर्दई जात॥ ११२॥

११२—(१) स्वयमेव विगलितं यो गृह्णीयाद्वा छलेन मधुगोलात्।
तत्रापि भवति हिंसा तदाश्रयप्राणिनां घातात्॥
(पु० सि० ७०)

११२—(२) मक्षिकागर्भसंभूतबालांडकनिपीडनात्।
जातं मधु कथं सन्तः सेवन्ते कललाकृतिः॥
एकैककुसुमक्रोडाद्रसमापीय मक्षिका।
यद्वमन्ति मधूच्छिष्ट तदश्नन्ति न धार्मिकाः॥
(सा० ध० टिप्पणी)

११२—(३) मद्ये मांसे मधुनि नवनीते तक्रतो बहिर्नीते।
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते तद्वर्णास्तत्रजन्तवः॥
(नागपञ्चले)

११२—(१) शहद की मक्खियां फूलों से रस पी पीकर शहद के छत्ते में आकर उगल देती हैं और बैठी २ विष्टादि वहीं करती हुई गर्भ से अंडे बच्चे भी उसी छत्ते में जनती है, निर्दई नीच लोग अंडे बच्चों समेत उस शहद के छत्ते को निचोडकर बाजारों में बेचआते हैं। अब विचार कीजिये कि इस तरह अपवित्रता से पैदा हुआ यह मांस तुल्य शहद किस तरह पवित्र माना जा सक्ता है। और उसके खाने वालों को किस तरह अहिंसा धर्मी कहा जा सक्ता है। कदापि नहीं कहाजा सक्ता। शहद में उसी रंग के सूक्ष्मत्रस जीव असंख्याते उत्पन्न होते और मरते रहते हैं। इसलिये शहद की एक बूंद भी भक्षण करने वाले को जीव हिंसा का पाप अवश्य लगता है। इस लिये थोडे से स्वाद के लिये इसको छोडनाही अच्छा है!

निशि भोजन करने में भी जीव हिंसा होती है

निशि को छोटे जीव वहु, उडत अंधेरो पाय।
मिलकर भोजन संगमें, रोगकरत दुख दाय॥११३॥

११३—(१)रात्रौ भुञ्जानानां यस्मादनिवारिता भवति हिंसा।
हिंसाविरतैस्तस्मात्यक्तव्या रात्रिभुक्ति रपि॥
(पु० सि० १२९)

११३—(२)मक्षिका वमनाय स्यान्स्वरभंगाय मूर्द्धजः।
यूका जलोदरे विष्टिः कुष्ठाय गृहकोकिली (२३)
न श्राद्धं दैवतं कर्म स्नानं दानं नचाहुतिः।
जायते यत्र किं तत्र नराणां भोक्तु महँति॥
(ध० स० भा० ६ प० २५)

११३—(१)रात को बहुत से छोटे २ डांस मच्छर पतंग आदि त्रस जी २ इधर उधर सब जगह अंधेरे में घूमा करते हैं। गैस के हडे, मसाल और दिये की रोशनी में भी बेशुमार जीव उडते हुये प्रायः चौइन्द्री त्रस जीव [सबही छोटे बडों को] दिखलाई देते हैं। वेही त्रस जीव रातको बनतीहुई रसोई के भोज्य पदार्थों में धुंये की गर्मी आदि से मर २ कर पडते रहते हैं और रात को खाते समय भी खाने की रसीली चीजों में मिल कर पेट में भी पहुंचेत रहते है। तो बताओ रात का खाना किस तरह जीव हिंसा का कारण नहीं कहा जा सक्ता? और फिर रातको खाने वाले किस तरह अहिंसा धर्म के धारक कहे जा सक्ते है। जब कि रात को धर्म शास्त्रकारों ने देवताओं की पूजा करना श्राद्ध करना होम करना दान आदि शुभ कर्म करना निषिद्ध बतलाया है तो रातको भोजन करना भी ठीक नही।

रात्रि भोजन त्याग का फल

निशि को जो इक सालतक, यदि दे भोजन त्याग।
छह महीने उपवासफल, पावत वह बडभाग। ११४।

११४—(१) मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कन्दभक्षणं।

ये कुर्वन्ति वृथास्तेषां तीर्थयात्राजपस्तपः

(हिन्दू पद्मपुराणे)

११४—(२) अस्तंगते दिवानाथे आपो रुधिर मुच्यते।

अन्नं मांस-समं प्रोक्तं मार्कण्डेन महर्षिणा।

('मार्कण्डेय पुराणे')

११४—(३) जो णिसि-भुत्तिं वज्जदि सो उववासं करेदि छम्मासं।

संवच्छरस्स मज्झे आरंभं मुयदि

(मुञ्चति) रयणीये (रजन्याम्)

(स्वामि का० अ० ३८३)

११४—[१] जो मनुष्य एक सालतक के लिये रातकेवक्त खाने पीने के सभी पदार्थों का खाना छोड़ देता है उसको ६ महीनें के उपवास करने रूप तप का फल प्राप्त होता है। जिन्होंने रातका भोजन करना अभीतक नहीं त्यागा है उनको धीरे २ छोडने का पहले साल दो सालका अभ्यास करना चाहिये बाद एकदम छोड देना चाहिये।

उदुम्बरफल भक्षण में जीव हिंसा

उदुम्बर[1] फल को तोड के, सूक्ष्म दृष्टि से देख।
उसमें उडते त्रस दिखें, भक्षण हिंसा पेख ॥११५॥

५ उदुम्बर फलों का नाम

वड पीपल अंजीर फल, पाकर फल अघखान।
गू र फल इन पांच की, उदुम्बर संज्ञा जान ॥११६॥

११५—(१) पिप्पलोदुम्बरप्लक्षवटफल्गुफलान्यदन्।
हन्त्यार्द्राणि त्रसान् शुष्काण्यपि स्वं रागयोगतः॥
(सा० ध० २ श्लो० १३)

११५—(१) ये खादन्ति प्राणिवर्गं विविधं हत्वा पंचोदुम्बराणां फलानाम्। श्वभ्रावासं यान्ति ते घोरदुःखं किंनिस्त्रिंशैः प्राप्यते वा न दुःखम्॥
(अमि० श्रा० ५ श्लो० ७१)

११६—(१) अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षन्यग्रोधादिफलेष्वपि।
प्रत्यक्षाः प्राणिनः स्थूलाः सूक्ष्माश्चागमगोचराः॥
(सा० ध० टि० श्लोक)

११५—[१] वड पीपल आदि वृक्षों के फलों को तोडकर बारीक नजर या खुर्द वीन से देखा जाय तो उनमें सूक्ष्म त्रस जीव तो असख्यात होते हैं और उन में दिखाई देने वाले कुछ स्थूल त्रस जीव भी उडते हुये या रिंगते हुये मालूम पडेंगे। इस लिये त्रस जीवों की हिंसा के पाप से बचने के लिये उदुम्बर फल खाना छोड देना चाहिये॥

षट काय के जीवों की दया पालने का उपदेश

"दया[१] करो" यह सब कहत, विरले पालत लोय।
त्रस थावर के ज्ञान विन; जीव दया नहिं होय॥११७॥

दया पालनार्थ चतुर्विध हिंसा निषेध

हिंसारम्भ[२] उद्योग से, पुनि विरोध से होय।
गृही त्यागे इन शक्ति सम, संकल्पी सब खोय॥११८॥

११८—(१) व्यापारैर्जायते हिंसा यद्यप्यस्य तथाप्यहो।
हिंसादि कल्पनाऽभावः पक्षत्वमिदमीरितम्॥१०॥
हिंसादि संभवं पापं प्रायश्चित्तेन शोधयन्।
तपो विना न पापस्य मुक्तिश्चेति विनिश्चयन्॥
(ध० सं० श्रा० ६ श्र० ११)

११८—(२) गृहवाससेवन रतो मंदकषाय. प्रवर्तितारम्भा।
आरम्भजां स हिंसां शक्नोति न रक्षितुं नियतम्॥
(अ० गि० श्रा० ६ प० ७)

११७—(१] "जीवो की दया करो" "जीवों पर रहम करो" इस बात को तो हर एक मतावलम्बी व हर एक आदमी कहता हैं॥ परन्तु स्थावर और त्रस जीवो की किस्में जाने वगैर वह किस तरह उनकी रक्षा कर दया वान वन सक्ता है॥ जीवोंकी किस्में जाने विना और उनमें अपने समान जान के जाने विना ही लोग धर्म का बहाना करके मास मदिरा और शहद आदि अभक्ष्य पदार्थों के सेवन को अच्छा समझते हैं॥ वरना छोड न दें॥ जो गुरु और शास्त्र इन अभक्ष्य पदार्थों के सेवने का उपदेश देते है। वे क्या कुं-गुरु और कुशास्त्र की सेवा से बच सकते हैं॥

११८—(१)घर की खान पानादि वस्तुओं के तैयार करने में चक्की चुल्ली

चतुर्विध हिंसकादिकतत्व

**हिंसक हिंसाकर्म पुनि, हिंस्य हिंसाफल चार ।
इनका तत्व-विचारि गृहि, त्यागत हिंसा सार ॥११९॥**

११६—(१) अवबुध्य हिंस्यहिंसक हिंसा हिंसाफलानि तत्वेन ।
नित्यमवगूहमाने निजशक्त्या त्यज्यतां हिंसा ॥
(पु० सि० ६०)

११९—(२) हिंस्याःप्राणा द्रव्यभावा प्रमत्तो हिंसकः मतः ।
प्राणविच्छेदनं हिंसा तत्फलं पाप संग्रह ॥
(ध० सं० श्रा० ६ श्र० १७)

आखली झाडू और घनोंचा (पन घटी) आदि घर अपरत्न कार्यों के करने से गृहस्थ को आरंभी हिंसा का पाप तो लगता है परन्तु उनकार्यों के करते हुये भी इन जीवोंको जानसे मारडालू ऐसा उनका संकल्प कभी नहीं रहताहै। परन्तु इस हिंसा के त्यागने में असमर्थ होनेसे पापका प्रायश्चित करने केलिये देव पूजनादि षट कर्म करता रहता है॥ व्यापारादिक आजीविका का कार्य करने में दूसरी उद्योगी हिंसा होती है इसकोभी यह त्यागने में असमर्थ है परन्तु यह कोई अधिक हिंसा का व्यापार नहीं करता है और जिस व्यापार को करता है उसमें भी इसके संकल्पी हिंसाके भाव नहीं रहते हैं। शत्रुओ आदि वा दुष्टजंतुओ से वा अपने कुटुम्बियों के तथा अपने आश्रित प्रजा के रक्षार्थ और न्यायके पालनार्थ युद्धादि करनेसे उत्पन्न हुई हिंसाकोतःमरीविरो धी हिंसा कहते हैं, इस हिंसा करने में भी उसका इरादा किसी को बेमतलब मारने का नहीं रहता है, आचार्यों का फिरभी गृहस्थों के प्रति यही-उपदेश है कि उक्त तीनो हिंसाओंको जहांतक बने बचाओ परन्तु चौथी संकल्पी (इरादेकी) हिंसा अपने प्राण जाने पर भी न करो।

११९—(१) हिंसा करने वाले को हिंसक, अपने और पराये द्रव्य तथा भाव रूप प्राणों को दुखानेको हिंसा मारे या सताये गये को हिंस्य, और उस हिंसा के दुखरूप फल भोगने को हिंसा का फल कहते हैं ।

अनछाने जल पीने में जीव हिंसादोष

जल[१] में सूक्ष्म दृष्टि से, दीखत जीव अपार ।
बिन छाने त्रस जीव बहु, मरते गले मंझार ॥१२०॥

छने जल पान से लाभ

जल[१] को गाढे वस्त्र से, वर्तन में ले छान ॥
पियते रोग न हो सकें, जीव दया भी जान ॥१२१॥

१२०—(१) वस्त्रेणातिसुपीनेन गालितं तत्पिबेज्जलम् ।
अहिंसा व्रत रक्षायै मांस दोषापनोदने ॥२४॥
अम्बुगालित शेषंतन्न क्षिपेत्क्वचिदन्यतः ।
तथा कूपजलं नद्यां तज्जलं कूपवारिणि ।
(ध० श्रा० ६ पं० २५)

१२१—[१)षट् त्रिंश दगुल वस्त्र चतुर्विंशति विस्तृतम् ।
तद्वस्त्रं द्विगुणी कृत्य तोयं तेनतु गालयेत् ॥
तस्मिन्मध्येतु जीवानां जलमध्ये तुस्थापयेत् ।
एवं कृत्वा पिबेत्तोय सयाति परमांगतिम् ।

१२१—(२)मुहूर्त गलित तोय प्रासुक प्रहरद्वय ।
उष्णोदक महोरात्रं पश्चात्सम्मूर्च्छनं भवेत् ॥
(श्रावक क्रिया कोष)

१२१—(१)जल में बारीक नजर डालकर देखा जाय तो बहुतेरे त्रस जीव चलते फिरते दिखलाई देंगे । वे जीव बगैर छाने जल पीनेसे गलेमें पहुंचते ही मर जायगे । इस लिये अहिंसा व्रत की रक्षा के लिये और त्रस जीवों के घात से उत्पन्न हुये मास के दोष से बचने के लिये पौन गज लम्बे और आध गज चौडे गाढ़े के कपडे को दुहरा कर के किसी वर्तन में छाने और उस जिवानी (बिलछन) को उसी कुये या नदी के जल में प्रक्षेपण (पहुचा)कर देवे जिस से छानने का लाभ [जीव रक्षा] हो ।

मनु स्मृति कार की सम्मति

नयन देखि भूपद धरें, पानी पीबे छान।
सच बोले मन शुध रखे मनु, यों करत बखान॥१२२॥

सप्तव्यसन के त्याग की प्रतिज्ञा

जूवा[1] मांस[2] शराब[3] पुनि, वेश्यागमन[4] शिकार[5]।
चोरी पर रमनीरमन; सप्त व्यसन निरवार॥ १२३॥

१२२—(१) दृष्टिपूतंन्यसेत्पादं वस्त्र पूतंजलं पिबेत्।
सत्यपूतांवदेद्वाचं मनः पूतंसमाचरेत्॥
(मनुस्मृति ६ अ० ४६)

१२३—(१) द्यूत मांस सुरा वेश्याऽखेट चौर्य परांगना।
महापापानि सप्तैते व्यसनानि त्यजे द्बुधः।
(पद्म० पं० १ अधि० १६)

१२३—(२) द्यूताद्धर्म सुतः पलादिह वको, मद्याद्यदोर्नन्दनाश्चारुः
कामुकया, मृगान्तकतया स ब्रह्मदत्तो नृपः।
चौर्यत्वाच्छिव भूतिरन्यवनिता दोषाद्दशास्यो हठा
दे कैकव्यसनाहता इतिजनाः सर्वेर्न कोनश्यति॥
(पद्म० प० १ अ० ३१

१२२—(१) उक्त विधि से छाने हुये पानी पीने की मर्यादा करीब पौन घंटे की कही है लवंग आदि के चूर्ण से प्राशुक किये की मर्यादा ६ घण्टे की है। और अदैन के समान गर्म कर ठंडे किये हुए जलकी मर्यादा २४ घंटे की है। मर्यादा के बाद उसमें फिर से सम्मूर्छन त्रस जीव पैदा हो जाते है। इस लिये उस पानी को दुबारा छानकर पीना चाहिये।

नोट— देव पूजन की विधि आ चुकी है।

जूवा खेलने से हानि

ज्वारी ढिंग अन्याय का; आवे यदि जो दर्व ।
धर्म हेत खरचे नहीं, व्यर्थ व्यसन में सर्व ॥ १२४ ॥

१२४—[१]भुवन मिदमकीर्तेश्चौर्य वेश्यादि सर्व
व्यसनपति रशेषा पन्निधिः पापबीजम्।
विषमनरकमार्गेष्वग्रयायीति मत्वाकइहविशद बुद्धि·
र्द्यूत मगी करोति॥

[पद्म०प० २ अ० १७]

१२४—[२] द्यूतमेतत्पुराकल्पे दृष्टं वैरकर महत्।
तस्माद्यूतन सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान॥

[मनु० ९ अ० २२७]

१२४—(3)सर्वानर्थं प्रथन मथनं शौचस्य सद्म मायायाः।
दूरात्परि हर्तव्यं चौर्यासत्या स्पद द्यूतम्।

[सा० ध० टीकाश्लो०]

१२४—[४]कथा यह स्वामी ? नाहिं शफरी ग्रहन जाल,
खेलत शिकार? कभी मांस चाह भयेते।
मांस हू भखत ? कभी दारूको खुमारी मांहि,
सुरापान करो ? कभी वैश्या घर गये ते।
वेश्याहू गमन ? यदि परनारी मिले नांहि,
परनारी सेवो ? कभीधन चोर लियेते।
चोरी हू करत ? कभी जूवे मांहि हार होय,
एते सब दोष हुये जूवा एक खेलते।
[पु० नी० श०) कुसग विष वृक्षकी कथाके आधार पर]

१२३—[१] पूर्व समय में धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर ने भी जूआ खेलने से राज्य भ्रष्ट होकर न ना दु ख सहे थे। १२३—[२] वक नाम का राजा मनुष्य का मास खाने से राज्य से उतार दिया गया था और वह मरके नरक को भी गया। १२३—(३) शराब पीने से यादव वंशी राज पुत्रों के कारण द्वारिका का दाह हुआ और सारा यादव वंश भी उसी में जल कर मर गया। १२३— ४ वैश्या सेवन से ९९ करोड दीनार का धनी चारु-दत्त सेठ दरिद्री होकर निंद्य स्थान में पडकर कुत्तों से भी अपमानित हुआ। १२३—(५) शिकार खेलने के कारण ब्रह्मदत्त राजा अपने वैरी देव के द्वारा राज्य भ्रष्ट कराया जाकर मर कर नरक गया। १२३—(६) चौर्य कर्म से सत्य घोष शिव भूति पुरोहित राजा के द्वारा गोवर भक्षण मल्ल मुष्टि घातादि से दुखित होकर मरके नरक गया। १२३—(७) पर स्त्री सेवन की लालसा से त्रिखंडी राजा रावण भी युद्ध में मारा जाकर नरक को गया। तव जो इन सातों को सेवन करेंगे उनका क्या हाल होगा। वे अवश्य ही संसार में वहुत काल तक नरकादि गतियो के दुख भोगेंगे॥

१२४—(१) प्राय देखा जाता है कि ज्वारी पहले अपने घर के द्रव्य को सफाया करता है। घर में न होने पर या न मिलने पर चोरी तथा अन्याय से द्रव्य लाकर फिर जुए में खोता है॥ उसका धन अन्याय का होने से धर्म कार्य में फिर किस तरह लग सक्ता है॥ शर्त वांध कर गंजफा तथा सट्टे वदनी आदि करना भी जुआ खेलने में ही शामिल है॥ इस लिये जुए के त्यागी को रुपये पैसे की शर्त वन्दी के सव काम छोड कर न्याय पूर्वक व्यापार करना चाहिये॥

नोट——मास शराव के दोष पहले दिखा चुके हैं॥

वेश्या गमन के दोष

दृष्टि परत चित को हरे; संगम बल हर लेत ।
धर्म, रूप धनको हरे, वेश्या अवगुण खेत १२५ ॥

१२५—(१) दर्शनाद्धरते चित्तं स्पर्शाद्धरते बलम् ।
सगमाद्धरते वीर्यं वेश्या प्रत्यक्षराक्षसी ।
[नी० शा०]

१२५—[२]या पर हृदये धत्ते परेण सह भाषते ।
पर निषेवते वेश्या परमा ह्वयते दृशा ।
[अमि० श्रा० ६२ अ० ७४]

१२५—[३]याः खादन्तिपल पिबन्तिचसुरा जल्पन्ति मिथ्या वचः ।
स्नि ह्यन्ति द्रविणार्थ मेवविदधत्यर्थप्रतिष्ठाक्षतिम् ।
नीचानामपि दुरवकर्ममसः पापन्लिकः कुर्वते ।
लाल पान मह निशं न नरक वेश्या विहायापरम् ॥
(पद्म० प० १ श्र० २३]

१२५—[४]रजक शिलास दृशीभिः कुक्कुर कर्पर समान चरितीभिः ।
गणिकाभिर्यदि सङ्गः कृतमिह परलोकवार्ताभि । २४

१२५—(५)वहनं जघनं यस्या नीचलोक मलाविलम् ।
गणिकां सेवमानस्य तां शौचंवद कीदृशं ॥
(अमि० ७३)

(नोट) मास भक्षण और शराब पीने के दोष पहले दिखा चुके है वहा से जान लेनी चाहिये ।

१२७—(१] जो वेश्या मद्य मासादि भक्षण करने वाली केवल धन से ही प्रीति करने वाली धोबी की सब तरह के नीच कपड़े छाटने की शिला तथा विषयी कुत्तों को मास की खोपडी और कलह की जड है ऐसी निकृष्ट राक्षसी के साथ जो सबन्ध करते हैं वे पहले से ही अपने उत्तम रूप धन और धर्म को वेश्या कामाग्नि में भस्म कर नरक का सीधा रास्ता तलाश कर लेते हैं ॥

शिकार खेलने में जीवहिंसा दोष

बेकसूर असहाय जे, पशु पक्षी जल जीव।
उन्हें शिकारी मारकर, हिंसक बने अतीव ॥१२६॥

१२६—(१)तनुरपि यदिलग्ना कीटिका स्याच्छरीरे
भवति तरल चक्षु र्व्याकुलो यः स लोकः।
कथमिहमृगयासानन्द मुन्नात शस्त्रो, मृगम
कृत विकारं ज्ञात दुखोऽपि हन्ति ॥
(पद्म० पं० १अ०२६)

१२६--(२) काननमें वसै ऐसो आनन गरीव जीव,
प्रानन सो प्यारे प्रान पूंजी जिस यहै है।
कायर सुभाव धरै काहू सौं न द्रोह करै
सवही सौं डरै दांत लिये तृन रहैहै।
काहू सां न रोप पुनि काहूपै न पोप चहै
काहूं के परोष पर दोष नाहिं कहै है।
नेकुस्वाद सारिवेको ऐसे मृग मारिवे को
हाहारे!कठोर! तेरो कैसे कर वहै है।
(भू० जै०श०५५)

१२६—(३)कण्टके नापि विद्धस्य महती वेदना भवेत्।
चक्रकुंतादि यष्ट्याद्यैः मार्यमाणस्य किं पुनः।
(म०भा० शां० १७)

१२६—(४) गृह्णन्तोऽपि तृणं दन्तै र्देहिनो मारयन्ति ये।
व्याघ्रेभ्यस्ते दुराचारा विशिष्यन्ते कथं खलाः
(अ० १२ प० ६५)

चौर्य कर्म में हिंसा दोष

जो कोइ जिस का धन हरे, सो तिस प्राण हरंत।
क्यों कि धनादिक वस्तु जग, प्राण रखन के हेत ॥१२७

परस्त्री सेवन के दोष

व्यभिचारी से सब डरें, घर बाहर के लोग।
वह कुकर्मफल यह चखे, परभव भी दुख भोग ॥१२८

१२७—(१)यो हरति यस्य वित्तं स तस्य जीवस्य जीवितं हरति।
आश्वास करं बाह्यं जीवाना जीवितं वित्तम्।
(अमि० श्रा० ६ श्र० ६२)

१२७—(२)अर्थादौ प्रचुरप्रपञ्च रचनै ये वञ्चयन्ते,परान्
नूनने नरक व्रजन्ति पुरतः पापिव्रजादन्यतः।
प्राणाः प्राणिषु तन्निबन्धन तया तिष्ठन्ति नष्टे धने,
यावान् दुःख भरो नरेन मरणे तावानिह प्रायशः!
(मद्य० १अ० २८)

१२८—(१)यच्चेह लौकिक दुःखं. परनारी निषेवने।
तत्प्रसूनं मतं प्राज्ञै नरकि दारुणं फलं ॥७६ ॥
याद्विनस्ति स्वक कान्तां साजार नक्यां खला।
विड़ालो याऽत्ति पुत्रां स्वंसाकिं मुञ्चति मूषिकाम्।
(अमि० १२ प० ८२)

१२८—(२) दीप्ता कारातप्ता, स्पृष्टा दहति पावक शिखेव।
मारयति योप भुक्ता. प्ररूढ़ विष विटपि शाखेव॥
(अमि० श्रा०६ प० ६६)

१२८—(३) मलिनयति कुलं छितय दीप शिखेवोज्वलापि मलजननी।
पापोपयुज्यमाना परवनिता तापने निपुणा॥
(अमि० श्रा० ६ प० ७२)

१२८—(४) चिन्तो व्याकुलता भया रति मति भ्रंशोऽति दाहभ्रम,
क्षुतृष्णाहतिरोगदुखभरणान्ये वान्यहो आसताम्।
यान्यत्रैव पराङ्गनाहतमतेस्त क्रूरि दुःखं चिर.
श्वभ्रे भावि यदग्नि दीपित वपुलोहाङ्गनालिंगनात्॥
(पद्म० प० १ अ० २१)

१२८—(५) परस्त्रीं रममाणस्य क्रिया काचिन्न शर्मणे।
दृश्यते ऽसमरङ्ग त्वादनवस्थित चित्ततः॥
(ध्र० स० आ० ६ अ० ६८

१२८—(६) मूर्च्छा तृष्णाङ्गपीडानुबन्ध कृत्ताप कारकः।
स्त्री संभोगः सुखं चेत्स्यात्कामिनां न ज्वरः कथम्॥
(धर्म० सं० आ० ६ अ० ६७)

१२८—१ जो घर में स्त्री या पुरुष व्यभिचारी होता है उस से अपने घरके और पार पड़ोसी सबही डरते रहते हैं कि कही इसकी संगति हमारे घर वालो पर असर न कर जाय। अगर उस को कुकर्म करते हुये अपने घर वालों के साथ देख पाते हैं तो उसको देह की चटनी यहा ही बनजाती है और परभव में नरको के दुखो का आस्वादन करना मुफ़्त में प्राप्त हो जाता है॥

सदैव उच्च विचारों की भावना रखनी चाहिये।

जीव मात्र से मित्रता, गुणी जनों से प्रेम।
दुखि पर दया, विधर्मि से मध्यम रहूं प्रभु? एम॥१२९॥

चतुर्विध भावना

१२९— १ सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोद, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम्। मध्यस्थभावं विपरीत वृत्तौ सदाममात्मा विदधातु देव!

(सामा०पा० १ श्लो०)

१२९— २ मैत्री भाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे।
दीन दुखी जीवों पर मेरे उर से करुणा स्रोत बहे॥
दुर्जन क्रूर कुमार्ग रतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रक्खूं मैं उन पर ऐसी परणति होजावे॥

(मेरी भावना ५]

१२९— ३ आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

(इति गुरु मंत्रः)

129—(4) O Lord? make my self such that I may olways have love for all beings, Pleasure in the company of learned men, unstinted sympathy for those in pain, and tolerance towards those perversely inclined

गृहस्थ के ३ भेद ।

अहिंसक गृहिके भेद त्रय, पाक्षिक नैष्ठिक साध ।
तीनोंहि श्रावक पद धरें, त्रस प्राणीन अबाध ॥१३०॥

पाक्षिक श्रावकका कर्तव्य

दैनिककर्म समूल गुण, अणुव्रत, व्यसन हटाय ।
संकल्पी हिंसा तजे, पाक्षिक पदवी पाय ॥ १३१ ॥

१३०—(१)पाक्षिकादिभिदा त्रेधा श्रावकस्तत्र पाक्षिकः ।
तद्धर्मगृह्यस्तन्निष्ठो नैष्ठिकः साधकः स्वयुक् ॥
(सा० ध०१ अ० २०) ।

१३१—[१]मैत्र्यादि भावनावृद्ध त्र[illegible] [illegible]योज्झनम् ।
हिंसाम्यह न धर्मादौ पक्षः स्य[illegible] [illegible]पुच- ।
([illegible]) आ० ५ अधि०३ ।

१३१— २ आहार निद्रा भय मैथुनंच सामान्य मेनत्पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मोहि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीना पशुभिःसामाना
हितो० मित्र लाभ ।

१३०— १ अहिंसक गृहस्थके ३ भेद हैं पाक्षिक, नैष्ठिक और साधक ये तीनो ही त्रस वधकी संकल्पी हिंसा के त्यागी होते हुये श्रावक संज्ञा को धारण करते हैं ।

१३१— १ जो गृहस्थ मैत्री प्रमोद-कारुण्य और मध्यस्थ भावनाओ को बढ़ाता हुआ दैनिक षट् कर्म और आठ मूलगुण को पालता हुआ सात व्यसनों को त्याग कर स्व प्रयोजनार्थ तथा देवी देवताओ के और धर्म के अर्थ द्वी इन्द्रियादि त्रस जीवों की सांकल्पिक हिंसा के त्याग करने का ही सदैव पक्ष अर्थात् ध्यान रखता है और स्थूल रूप से सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य और सन्तोष व्रत का भी पालने का अभ्यास करता है उसी को पाक्षिक श्रावक कहते हैं ।

निर्दई वा अज्ञानी ही पाक्षिक क्रिया से हीन होते हैं।

पाक्षिक[१] किरिया हीन नर, निर्दई अज्ञ विचार ।
पशु सम वह विषयादि में, जन्म गमावे सार ॥ १३२

आवश्यकीय प्रतिज्ञा करने की प्रार्थना

अहिंसा धर्म प्रकाश में, यदि बुध किया विहार ।
चुन चुन प्रतिज्ञा रतनकी, तो माला हिय धार १३३॥

प्रतिज्ञा धारण करने की विधि

मैं ....आज ....से नियमरूप से [इतने काल)

..............तक वा जीवन पर्यन्त के लिये इन नीचे लिखी चीजोंके त्याग की और इन नियमोंके यथा शक्ति पालने की सच्चे दिलसे प्रतिज्ञा कर अपनी आत्मा को सदैव दयामय बनाने का प्रयत्न करूंगा ।

३१—[२)जो मनुष्य धर्म सम्बन्धी ऊपर बतलाई हुई पाक्षिक क्रियाओ से हीन है उसमें, और उसके समान ही खाने पीने नींद लेने भय करने और मैथुनादि सेवनकी क्रिया करने वाले पशुओं में क्या अन्तर रहेगा; यहबात बुद्धिमानो को सोचकर धर्माचरणी बनने का प्रयत्न करना चाहिये । नैष्टिक और साधक का कर्तव्य आगे लिखा गया है ।

१ कुदेव कुशास्त्र और कुगुरु को धर्म बुद्धि से नमस्कार करने के त्याग की
२ त्रसजीवों की संकल्पी हिंसाके त्याग की
3 त्रस जीवोंके शिकार खेलने के ,,
४ मांस खाने और शराब पीनेके ,,
५ शहद खाने के ,,
६ पांच उदुम्बर फल खानेके ,,
७ सचित्त कन्दमूलफल खानेके ,,
८ रातको अन्नके भोजन खाने के ,,
६ शर्तलगाकर रुपये आदिसे जुआ खेलने के त्याग की ,,
१० राज दण्डनीय लोकनिन्दनीय चोरी करने के त्याग की ,,
११ परस्त्री सेवने के त्याग की
,,१२ वेश्या गमन के त्याग की

प्रतिज्ञाकर्ता

हस्ताक्षर... ....

(आवश्यक कार्य और अस्वस्थ- दशा को छोडकर ये नियम पालना)

१ नित्य देवदर्शन पूजन करने का नियम
२ ,, सामायिक (सध्या) करनेका ,,
३ ,, धर्म शास्त्र स्वाध्याय करनेका ,,
४ ,, पानी छान कर पीने का ,,
५ ,, पर्वके दिनोंमें अचित्त भोजन करने का ,,
६ पर्वके दिन ब्रह्मचर्य से रहनेका ,,
७ यथाशक्ति चतुर्विध दान देने का
८ ,, लोकोपकारी कार्य में सहायता करने का ,,
६ ,, लोकव्यवहारमें सच बोलनेका
१०, उच्चभावना बनाये रखनेका ,,
११ ,, सत्यदेव गुरु और शास्त्र की विनय करने का ,,
१२ ,, पर्वके दिनोंमें एकाशनादि तप एवं व्रत करनेका ,,

प्रतिज्ञाकर्ता

हस्ताक्षर . ...

(नोट) जिन चीजो के त्यागकी और जिन नियमों के पालने की (प्रतिज्ञा लेने वाले को) प्रतिज्ञा न करनी हो उसके आगे ऐसा + निषेध मार्क लगादेना चाहिये। आवश्यक कार्य और अस्वस्थ दशा से यह मतलब समझना चाहिये जैसे जरूरी काम पडनेपर परदेशादि में साधन न मिलनेपर सूतक पातक में हारी व बीमारी की हालत को छोडकर। इसके सिवाय और जो प्रतिज्ञा करो वह भी इसमें लिख लेनी चाहिये

चतुर्थाध्याय सारांश

पाक्षिक श्रावक की विधी; इस चौथे अध्याय ।
"पुष्पाक्षर" ने कुछ लिखी. शास्त्र कथित सुखदाय १२४॥

[इति चतुर्थाध्यायः]

(नोट)—इस चौथे अध्याय में धर्मात्मा गृहस्थ पाक्षिक श्रावक के त्यागने और सेवन की वे ही विधियां बताई गई हैं जिनको हरएक मतका अनुयायी (मजहब वाला) अपनी शक्ति के अनुसार प्रतिज्ञा लेकर अपने जीवन को धार्मिक और सफल बनाकर बहुत कुछ इस विनश्वर शरीर से पुण्य उपार्जन करसक्ता है ॥ यद्यपि ऐसी बहुत सी चीजें हैं जिनको मनुष्य या स्त्री अपने तमाम जीवन में धार्मिक तथा लोक लज्जादिके नियमसे न तो खाते ही हैं और न सेवन ही करते हैं परन्तु प्रतिज्ञा किये विना उन अभक्ष्य पदार्थोंका न खाना तथा अयोग्य पदार्थों का न सेवन करना पुन्य के देनेवाला नहीं हो सक्ता है । इस लिये उनको छोडने या न सेवने की प्रतिज्ञा अवश्य लेनी चाहिये जिससे अपनी आत्मा को धर्म निष्ठ बनाकर पापकार्यों से निरतर बचाया जा सक्ता है। जो मनुष्य समझदार होकर यदि धर्म नहीं करता है तो उसका जीवन पशुओं के समान ही व्यतीत होता हुआ समझना चाहिये । इस पुस्तकका प्रतिदिन स्वाध्याय कर अपनी प्रतिज्ञा दृढ करते रहना चाहिये, यह पुस्तक रचयिता की आपसे सविनय प्रार्थना है ।